• वर्ष ६७ • अंक ३ • मूल्य ₹ ४० फरवरी (प्रथम) २०२५

पाक्षिक

परोपकारी

स्वतन्त्रता के प्रथम उद्घोषक, नवजागरण के पुरोधा

महर्षि दयानन्द सरस्वती

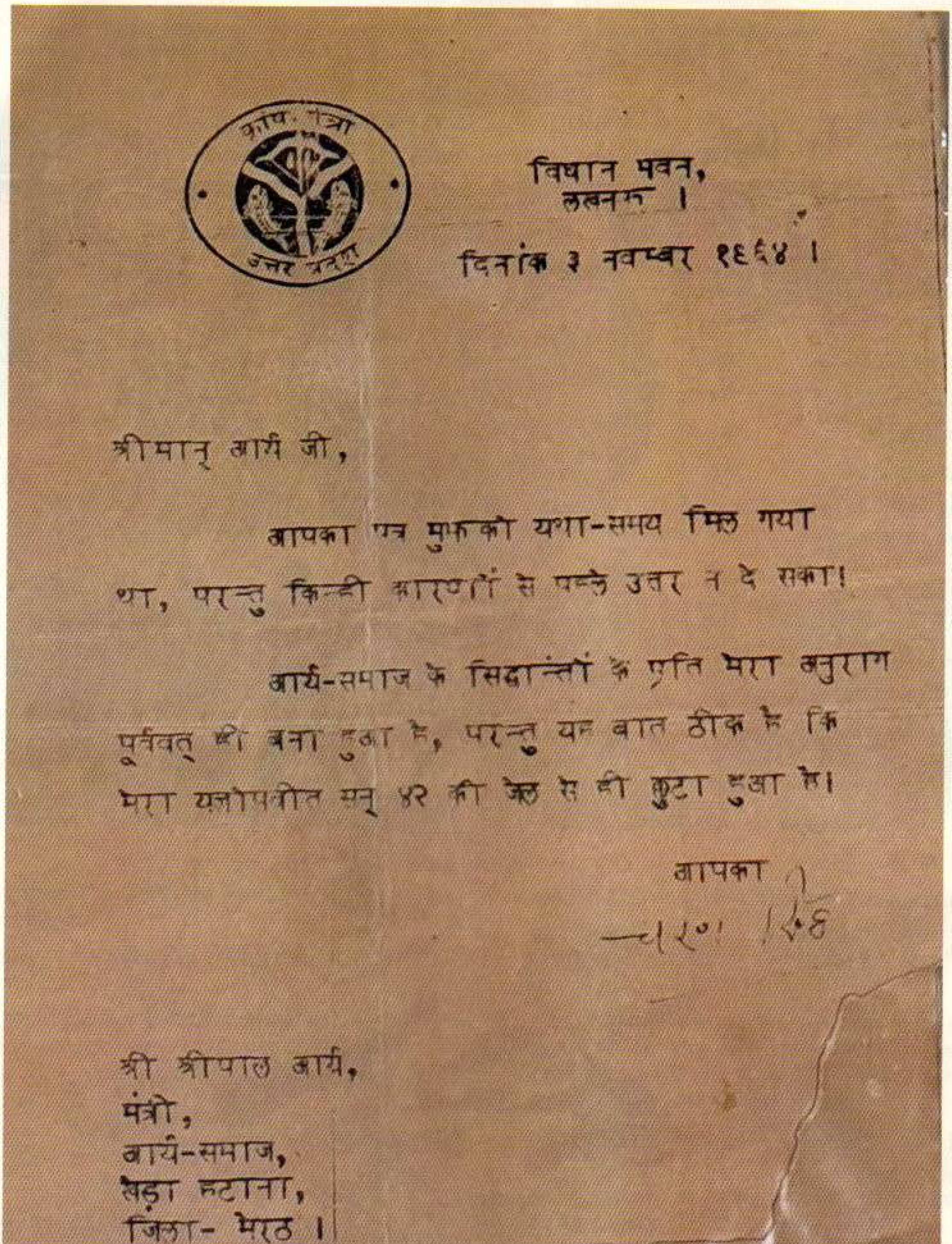

उत्तर प्रदेश

विधान भवन,
लखनऊ।

दिनांक ३ नवम्बर १९६४।

श्रीमान् आर्य जी,

आपका पत्र मुझको यथा-समय मिल गया था, परन्तु किन्हीं कारणों से पहले उत्तर न दे सका।

आर्य-समाज के सिद्धान्तों के प्रति मेरा अनुराग पूर्ववत् ही बना हुआ है, परन्तु यह बात ठीक है कि मेरा यज्ञोपवीत सन् ४२ की जेल से ही छुटा हुआ है।

आपका
चरण सिंह

श्री श्रीपाल आर्य,
मंत्री,
आर्य-समाज,
खेड़ा हटाना,
जिला- मेरठ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त चौधरी चरणसिंह

पूर्व प्रधानमन्त्री चौधरी चरणसिंह निष्ठावान् आर्य समाजी थे। राजनीति के क्षेत्र में उनकी जैसी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के उदाहरण मुश्किल से मिलेंगे। चौधरी साहब के निकट सहयोगी रहे एवं आर्य समाज के प्रमुख आर्योपदेशक यश:शेष महाशय श्रीपाल आर्योपदेशक को लिखा उनका यह पत्र इसकी पुष्टि करता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६७ अंक : ०३

दयानन्दाब्दः २००

विक्रम संवत् माघ शुक्ल २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

■

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

■

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,

केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

०८८९०३१६९६१

■

मुद्रक- डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

८२०९५८६१६६

■

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

फरवरी प्रथम, २०२५

अनुक्रम

०१. कुम्भ-पर्व	सम्पादकीय	०४
०२. कुछ तड़प कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०५
०३. बुद्धि और शास्त्रबोध	श्री रामनिवास 'गुणग्राहक'	०९
* नवीन प्रकाशन पर ५० प्रतिशत की विशेष छूट		११
०४. ज्ञान सूक्त-२५	डॉ. धर्मवीर	१२
०५. हमारी कुशलगढ़ (बांसवाड़ा) यात्रा		१५
०६. अहंकार इक अन्धकार है	- डॉ. रामवीर	१६
०७. एकता का आधार वेद	डॉ. रामनाथ वेदालंकार	१७
०८. श्री पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु	डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री	२०
* परोपकारिणी सभा, अजमेर स्थापना दिवस		२९
०९. योग-ध्यान स्वाध्याय शिविर		३०
१०. वेद कण्ठस्थीकरण प्रतियोगिता		३१
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३२
* प्रवेश सूचना		३२
११. संस्था की ओर से....		३३
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

कुम्भ-पर्व

आजकल सारा देश पर्व के उल्लास में उल्लसित है। पर्व का अभिप्राय है-पूर्णता, प्रसन्नता प्रदान करने वाला क्षण। मनुष्य स्वभाव से ही इस प्रकार के क्षण-अवसर आने पर उससे नई ऊर्जा प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है।

वैदिक संस्कृति यज्ञीय संस्कृति है। इसलिए इन अवसरों पर यज्ञ का विधान है। दिन-रात, पूर्व पक्ष-अपरक्ष (कृष्ण एवं शुक्ल) आदि पर भी यज्ञविहित हैं। प्रतिदिन क्रियमाण यज्ञ तो नित्यकर्म में सम्मिलित हैं, किन्तु पर्व-अमावस्या तथा पूर्णिमा के अवसर पर होने वाले यज्ञ प्रकृति यज्ञ हैं। किन्तु शनैः शनैः इन यज्ञों का स्थान स्नान आदि ने ले लिया।

नदियों के किनारे पर्व के दिन अर्थात् पक्ष, संक्रान्ति आदि के अवसर पर बड़े-बड़े मेले उत्सव का रूप ग्रहण कर गए। 'अप्स्वन्तरमृतमप्सुभेषजम्' जलों के अन्दर अमृत अर्थात् जल अमृत स्वरूप हैं, जल भेषज हैं। वेद ने जलों की हिंसा अर्थात् उन्हें किसी भी प्रकार प्रदूषित न करने का आदेश दिया है- 'मापो हिꣳसीः'। इसीलिए बड़े-बड़े पर्व नदियों के किनारे आयोजित होने प्रारम्भ हो गए। इन सब आयोजनों से मनुष्य का नदियों के साथ तादात्म्य इतना घनिष्ठ हो जाता है कि व्यक्ति उसे किसी भी प्रकार प्रदूषित नहीं करता है, क्योंकि इन मेलों में उसी नदी जल में खान-पान, स्नान आदि सभी कार्य सम्पन्न होते हैं तथा परम्परागत रूप से इन गंगा आदि नदियों के इस जल को पवित्र मानते हुए अपने घरों को भी पवित्रता की दृष्टि से लेकर जाते हैं। इन्हें पवित्र मानने के कारण इनका संरक्षण व्यक्ति का नैतिक दायित्व भी हो जाता है। ये नदियाँ केवल जलधाराएँ ही नहीं हैं, अपितु जीवन धाराएँ भी हैं।

उत्सव-पर्व-मेले की इसी परम्परा में अपनी धार्मिक मान्यता तथा जनविश्वास के कारण 'कुम्भ पर्व' सर्वातिशायी है। पौराणिक परम्परा के अनुसार देव-असुरों के द्वारा समुद्र-मन्थन के समय प्राप्त होने वाले रत्नों में अमृत भी था। असुर उस अमृत कुम्भ को ले जाना चाहते थे। इसी संघर्ष में उस कुम्भ से अमृत की कुछ बूंदे या कण पृथिवी पर जिन चार स्थानों- हरिद्वार, प्रयाग, नासिक, उज्जैन में गिरे थे। उन्हीं स्थानों पर बारह-बारह वर्षों के अन्तराल पर कुम्भ का अयोजन किया जाता है। प्रत्येक स्थान पर छः वर्ष के अन्तराल पर अर्धकुम्भ आयोजित होता है। सुदीर्घ काल से यह परम्परा चली आ रही है।

इस वर्ष प्रयागराज में १३ जनवरी से महाकुम्भ का ऐतिहासिक आयोजन हो रहा है। मुक्ति की कामना वाले तो इस करोड़ों की भीड़ (प्रथम दिन १३ जनवरी में डेढ़ करोड़ तथा मकर संक्रान्ति के अमृत (इसे मुगलकाल से शाही कहा जाता था) स्नान के दिन उससे भी अधिक श्रद्धालुओं ने स्नान किया है।) में स्यात् एक प्रतिशत से भी कम ही होंगे। सरकार ने अपनी पूरी शक्ति इसे भव्य एवं ऐतिहासिक बनाने में लगाई हुई है।

वर्तमान सन्दर्भ में इस पर एक अन्य दृष्टि से भी विचार करने की आवश्यकता है। स्नान करने से पाप धुलें अथवा नहीं, किन्तु महत्त्वपूर्ण है, जो समाज छोटी-बड़ी जातियों में बँटा है और राजनीतिक दल उसे जाति जनगणना आदि के नारे देकर और भी बाँट देना चाहते हैं। उस दृष्टि से देखें तो इस करोड़ों की भीड़ में न तो कोई ब्राह्मण के नाम पर अलग घाट पर है और न ही कोई दलित अथवा निम्न के नाम पर किसी दूसरे घाट पर। यदि कोई है, तो केवल हिन्दू है और केवल हिन्दू है।

यदि कुम्भ की यह उपलब्धि और भाव इस देश के जनमानस में घर कर जाए कि हम सब हिन्दू हैं और एक हैं। उपासना पद्धति, खान-पान, रीति-रिवाजों के सारे भेद यदि संगम तट पर प्रवाहित हो जाएं और हिन्दू एक होकर उठ खड़ा हो, तो अनेक कुरीतियाँ और समस्याएँ दूर होने में देर नहीं लगेगी। इसी में देश और समाज दोनों के लिये अमृत/कल्याण अन्तर्निहीत है।

-डॉ. वेदपाल

कुछ तड़प कुछ झड़प

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

सनातन धर्म की दुहाई - आजकल सत्ताधारी नेता तथा संघ के प्रमुख श्री भागवत सनातन धर्म की सोत्साह बहुत दुहाई देकर चर्चा में रहते हैं। जन्म की जात पात को पहले सनातन धर्म का एक मूलभूत सिद्धान्त माना जाता था। कौन नहीं जानता कि सनातन धर्म के जयकारे लगाकर पौराणिक विद्वान् जन्म की जातपात को वेदशास्त्र से सिद्ध करने के लिये आर्यसमाजी विद्वानों से शास्त्रार्थ किया करते थे। ऐसे कई शास्त्रार्थ छपते रहे हैं। कई आर्यसमाजी पण्डित जातपात का खण्डन करते हुए जेल में भी ठूंसे गये। वीर चिरञ्जीलाल जी आर्य की पिटाई भी की गई और जेल में भी यातनायें सहनी पड़ीं। बाल विवाह, शिशु विवाह, भी सनातन धर्म का एक मुख सिद्धान्त था। इसका खण्डन करने पर आर्य विद्वानों की पिटाई धुनाई होती रही। वीर हरनामसिंह को अनमेल विवाह के विरोध के लिए बहुत निर्दयता से पीटा गया। यह घटना इतिहास के पृष्ठों पर है।

हर्ष का विषय है कि अब भागवत जी कह रहे हैं कि जन्म की जातपात मनुष्य की बनाई हुई है। आज के दस बीस वर्ष पहले ऐसे नेताओं के किसी लेख, पुस्तक व व्याख्यान में यह कथन छपा कोई माई का लाल दिखा दे। आर्यसमाज जो कहता रहा, धर्म वही है। सत्य वही है जो वेद सम्मत है। यह कहने की हिम्मत इनमें आज नहीं है, परन्तु ऐसा दिन अब दूर नहीं है। दलितोद्धार करते हुए कई आर्यवीरों को सिर कटाने पड़े। अब तो विधर्मी बनाये गये बन्धुओं को फिर से जाति का अंग बनाने की सनातन धर्म की दुहाई देने वाले एक नेता ने घोषणा करके आर्य धर्म का डंका बजा दिया है। इसके लिए वह बधाई का पात्र है।

कुम्भ मेले का इतिहास व कुरीतियाँ - प्रधानमन्त्री महोदय तथा आदित्यनाथ योगी महाराज कुम्भ मेले के नाम पर एकता का सन्देश उपदेश दे रहे हैं। कुम्भ मेले के नाम पर होने वाली सब बुराइयाँ, ऊंच-नीच, पाप ताप तथा निन्दनीय जातपात इन लोगों को सब भूल गये। मैंने कुम्भ मेले की भारी भीड़ में लाखों साधुओं की भीड़ में सर्वथा नंगे साधु बाबाओं को देखा था। इस कुकृत्य को, पाप को ये नेता भूल गये क्या? इसी कुम्भ मेले पर लाखों हिन्दुओं की भीड़ में पादरी नीलकण्ठ शास्त्री जैसे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् ने हरिद्वार, प्रयाग आदि नगरों में कुम्भ के मेले पर सहस्रों हिन्दुओं को ईसाई बना लिया। काशी, हरिद्वार और प्रयाग के पण्डित उसकी हिन्दू के ईसाईकरण की कुचाल को कतई विफल न बना सके।

पं. गंगाप्रसाद शास्त्री जी ने लिखा है - दिल्ली के सनातन धर्मी विद्वान् नेता ने ऋषि दयानन्द जी पर अपनी पुस्तक में कुम्भ मेले पर हिन्दुओं के बड़ी संख्या में धर्मच्युत होने की इस दुःखद घटना पर ऐसा लिखा है। आपने लिखा है इन तीर्थों के ब्राह्मण पादरी नीलकण्ठ का समाना न कर सके, परन्तु कुछ ही वर्ष पश्चात् जब प्रयाग में पादरी नीलकण्ठ की ऋषि से धर्म चर्चा हुई तो महर्षि ने उसको निरुत्तर कर के उसका मुँह बन्द कर दिया। पं. गंगाप्रसाद जी शास्त्री को मैंने कई बार सुना और देखा भी। वह सनातन धर्म के विद्वान् नेता तो थे, परन्तु महर्षि के घोर विरोध करने को सनातन धर्म मानने वाले विरोधी पौराणिक नहीं थे। मैंने महर्षि के सम्पूर्ण जीवन चरित्र ग्रन्थ में काशी हरिद्वार के पण्डितों की कुम्भ मेला पर पादरी नीलकण्ठ शास्त्री के सामने ऐसी विफलता का उल्लेख किया है। आज मोदी जी तथा योगी जी कुम्भ मेला की महिमा पर बोलते हुए थकते नहीं हैं। अपना दोष दुर्बलता अब उन्हें कोई नहीं चुभता।

पाठक यह मत भूलें – कि इस नीलकण्ठ शास्त्री को अंग्रेजीराज में पूना नगरी में ऋषि के वेद प्रचार अभियान को विफल बनाने भेजा गया था। महर्षि के घोर विरोधी लोकमान्य तिलक के गुरु श्री चिपलूणकर ने अपने ग्रन्थ 'निबन्धमाला' में यह स्पष्ट लिखा है कि पूना में महर्षि के वेद प्रचार अभियान को विफल बनाने में नीलकण्ठ शास्त्री अपने नगर में पूरा-पूरा विफल रहा। उसके व्याख्यानों में श्रोता ऊंघते थे। इसके विपरीत ऋषि की तेजस्वी वाणी से श्रोता उनके ओजस्वी व्याख्यानों को सुरुचि से सुनते थे।

सनातन धर्म की रट लगाने वाले सत्ताधारी नेता एक लम्बे पौराणिक काल में हिन्दुओं के दोषों, दुर्बलताओं व अन्धविश्वासों के विषय में एक शब्द नहीं बोलते। क्या धर्म रक्षा, देश सुधार व देश सेवा दोषों को छुपाने व दुर्बलताओं तथ अवगुणों पर पर्दा डालने से हो सकती है?

जिनका मैं ऋणी हूँ – बैंगलूर में एक अंग्रेजी दैनिक पत्र के सम्पादकीय विभाग के एक सम्पादक नित्य प्रति मेरे व्याख्यानों को सुनने समाज के उत्सव पर आता रहा। एक दिन सेना के दो युवा अधिकारी मुझे मिलने के लिये आये तो मैं श्रोताओं की भीड़ में से उन्हें मिलने जा रहा था। तब उस सम्पादक बन्धु ने बड़े प्रेमभाव से मुझसे कुछ प्रश्न पूछने का समय मांगा।

उसका एक प्रश्न तो यह था कि आपके प्रत्येक व्याख्यान में कई पुस्तकों के प्रमाण, कई लेखकों के नामों और कई सन्, संवत् का उल्लेख होता है। ऐसे सब नाम व सन् संवत् प्राय: ठीक ही होते हैं। आपको इतना कुछ स्मरण कैसे रहता है? आपकी असाधारण स्मरण शक्ति का रहस्य क्या है?

मैंने उसका प्रश्न पूछने के लिए आभार प्रकट करते हुए कहा, ''इसका उत्तर तो मेरे कुल के बड़े व मेरे निर्माता ही ठीक-ठीक दे सकते थे। जिन्होंने मेरा निर्माण किया वही इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दे सकते थे तथापि इस विषय में दो विशेष बातें मैं अभी आपको बताता हूँ। मैं समझता हूँ कि मेरा प्रात: प्रभात काल में जागना, नित्य कुछ व्यायाम करना तथा शाकाहारी होना भी एक बड़ा कारण है। जिन्होंने मेरा निर्माण किया मैं स्वयं को उनका ऋणी मानता हूँ जो आप सरीखे एक अनुभवी सम्पादक को ऐसे प्रश्नों का उत्तर पाने की इच्छा जागी है। मेरा उत्तर पाकर वह भाई आनन्दित हुआ।''

गुजरात से एक विद्वान् विशेष रूप से ऐसे कुछ प्रश्न पूछने अबोहर आया। उसका एक प्रश्न यह था कि मैंने कई बार आपको सुना है और आपका साहित्य भी पढ़ता रहता हूँ। जब आपसे कोई प्रश्न पूछा जाता है तो उत्तर देते हुए एक जैसे कई उदाहरण एकदम आपको कैसे सूझ जाते हैं? यह प्रश्न और भी कई गुणियों ने किया। मैंने सबको विनम्रता से यह उत्तर दिया कि मैं कुमर अवस्था से, पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को सुनने लगा। उनके व्याख्यानों, उपदेशों व धर्म चर्चा में कई घटनायें व दृष्टान्त सुनने को मिलते थे। वे अपने आप में अनुभवों तथा रोचक शिक्षाप्रद प्रेरक प्रसंगों का भण्डार थे। उन जैसा ऐसा गुणी विचारक मैंने और कोई नहीं देखा। इसे आप मुझ पर उनहीं की छाप मान सकते हैं।

स्वामी जी को कहीं कोई शिक्षाप्रद प्रंसग या घटना सुना दे तो वे उसकी जाँच पड़ताल के लिए दूरस्थ नगरों व ग्रामों की लम्बी-लम्बी पैदल यात्रा पर चलकर उसकी प्रामाणिक जानकारी ही लेकर आते। यथा किसी पौराणिक पण्डित द्वारा प्रचारित एक मनगढ़न्त गायत्री मन्त्र की खोज करते-करते हरियाणा के एक ग्राम में श्री मास्टर अमरसिंह जी आर्य मिशनरी को खोजकर के उसकी पूरी-पूरी जानकारी लेकर ही लौटे।

उन्हीं से मैंने ऐसी सामग्री की खोज के लिये दूरस्थ यात्रायें करने का गुण ग्रहण किया यथा मैंने कर्नाटक में श्री महात्मा ब्रह्मदेव जी के मुख से उड़पी के एक

आर्यपुरुष से श्री स्वामी जी विषयक एक संस्मरण सुना, ''वे दूर से चलते हुए ऐसे दिखाई देते थे कि मानो एक पर्वत चलता आ रहा है।''

यह संस्मरण सुनकर मैं भी उसी पुरुष के मुख से यही पूरा संस्मरण सुनने के लिए अबोहर से उड़पी पहुंच गया। इतनी दूर और इतना धन व्यय करके एक महापुरुष विषयक एक अद्भुत वाक्य की जाँच के लिए इतनी दूर पहुँच पाने की इस घटना को आप जनून ही तो कहेंगे। न जाने मेरे जीवन में ऐसी कितनी घटनायें घटीं। यह सब स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के जीवन की देन समझें।

इस प्रकार की कई घटनाओं व गुणों के लिए मैं अनेक पूज्य महापुरुषों का ऋणी हूँ। 'गंगाज्ञान सागर' के एक भाग में आप मेरा एक लेख, ''मैं तुम्हारा लेख पढ़कर फड़क उठा'' पढ़िये। यह सन् १९५५-५६ की दीपमाला की घटना है। रिफॉर्मर साप्ताहिक में मेरा एक लेख पढ़कर उपाध्याय जी ने मुझे एक पोस्टकार्ड लिखा, ''मैं तुम्हारा लेख पढ़कर फड़क उठा।'' आपने जीवन में एक ही बार एक साहित्य प्रेमी युवक को यह वाकय लिखा। मैंने गंगा ज्ञान सागर ग्रन्थमाला में इसी पर एक हृदयस्पर्शी लेख लिख डाला है कोई और ऐसा यशस्वी लेखक जिसे पूज्य उपाध्याय जी ने कभी ऐसा पत्र लिखकर प्रेरणा व प्रोत्साहन दिया हो? क्या यह कोई छोटी सी घटना है? मैं उनका स्वयं को ऋणी मानता हूँ।

पूज्य उपाध्याय जी ने साहित्यिक जीवन की यात्रा आरम्भ करने पर मुझे अपनी एक उर्दू पुस्तक 'प्यामे हयात' (जीवन सन्देश का पढ़कर उसमें आवश्यक अदल बदल संशोधन, सम्पादन करने को श्रीयुत विद्यार्थी जी सम्पादक रिफॉर्मर द्वारा आदेश सन्देश दिया।) मैं उपाध्याय जी की पुस्तक का संशोधन करूँ? ऐसा सौभाग्य और किसे प्राप्त हो सका? इस कारण मैं उनका ऋणी हूँ। उनका यह उपकार भुलाया नहीं जा सकता।

श्री पं. नरेन्द्र जी ने अद्भुत आदेश दिया - यह सन् १९७५ की बात है। पं. नरेन्द्र जी आर्यसमाज शताब्दी महापर्व के संयोजक के रूप में देहली में थे। आपको मेरे दिल्ली आने की कहीं से सूचना मिली तो आप आर्यसमाज नया बांस में मेरे पास पहुंच गये। मुझे वहाँ से उठकर श्री पं. कर्मवीर जी के कमरे में चलने को कहा। अपनी जैकट की जेब से अपनी एक उर्दू पुस्तक की एक पाण्डुलिपि निकालकर कहा, ''यह मेरे जीवन की कहानी मैंने लिखी है। इसे सुनो फिर इसमें जो घटाना बढ़ाना है वह आप कर दें। इसे हिन्दी में अनूदित कर दें फिर छपवा देंगे।''

मैंने कहा, ''मैं और आपकी पुस्तक में बदल बदल कर दूँ?'' तब पण्डित जी बोले, ''यह तो मैं जानता हूँ कि आप क्या कर सकते हैं?'' ठीक उपाध्याय जी के सदृश मुझे अपनी आत्मकथा के सम्पादन का कार्य सौंपा। पं. दुर्गादास शर्मा ने अपने पत्र आर्यगज़ट की शोभा के लिए इसे अपने पत्र में क्रमशः छापने का दबाव बनाया। बाद में पुस्तक रूप में श्री पण्डित प्रियदत्त जी ने मेरे प्राक्कथन के साथ इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। जब पण्डित जी चल बसे तो उनकी जन्मशताब्दी पर उनका तीन सौ पृष्ठ का प्रामाणिक जीवन चरित्र मैंने लिखकर अजय जी को प्रकाशनार्थ देकर एक नया इतिहास रचना। बलिदानी पं. नरेन्द्र जी की कृपा से मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गया? दक्षिण भारत के एक महान् क्रान्तिकारी नेता की जीवनी लिखने का सबसे पहले सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। पण्डित जी का ऋणी होने पर मुझे गौरव है। ऐसी दूसरी घटना आर्यसमाज के इतिहास में नहीं मिलेगी।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने ऋणी कर दिया - श्री स्वामी जी महाराज अपने जीवन की अन्तिम वेला में रुग्ण थे फिर भी ऋषि बोधपर्व पर दयानन्द मठ पहुँचे तो मैं उनका पता करने दीनानगर पहुँचा। यह सन् १९५४ की घटना है। चरणस्पर्श करके कुछ पूछने ही लगा था कि आप बोले कि दिल्ली से आते हुए जालन्धर छावनी रेलवे स्टेशन पर मैंने श्री जावेद जी को 'हमारा राजस्थान'

पुस्तक देकर यह कहा है कि इसे पढ़कर इसके लेखक के सन् १८५७ के विप्लव विषयक ऋषि दयानन्द की संलिप्तता पर अपने खोजपूर्ण प्रामाणिक विचार दें। मैं जावेद जी के लेख में पहले ही स्वामी जी के निर्देश की चर्चा पढ़ चुका था।

अब स्वामी जी ने मुझे भी ऋषि जीवन पर शोध करके खोजपूर्ण, प्रामाणिक तथा यथार्थ सत्य का प्रकाश करने की आज्ञा दे दी। कहा, "कुछ भी भावुकतावश न लिखा जावे। जो लिखें वह सप्रमाण हो।" जो आदेश जावेद जी जैसे अनुभवी लेखक को दिया गया वही मुझे भी दिया गया। मेरा सौभाग्य ही समझें कि महामुनि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की दूरदर्शिता से मैं अब तक के लिखे गये सबसे बड़े ऋषि जीवन का अनुवादक तथा सम्पादक बन गया। मैं उनका कितना ऋणी हूँ यह मैं नहीं बता सकता। अगली पीढ़ी के साहित्यकार ही इस पर कुछ लिखें तो ठीक हैं।

आर्यसमाज के वर्तमान काल के विद्वानों के चरणों में – वर्तमान काल के आर्यसमाज के गुणी लेखकों विद्वानों ने आर्यसमाज के गुणी लेखकों, विद्वानों ने आर्यसमाज के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर अभी तक तो एक शब्द नहीं लिखा। क्या इसे इतिहास विषयक भूल न माना जावे?

इस काल खण्ड के वयोवृद्ध पूजनीय गम्भीर प्राय: सब आर्यविद्वानों की सेवा में उनके स्वास्थ्य का पता करने तथा कुछ सीखने के लिये जितना मैं जाता रहा हूँ इतनी बार कोई दूसरा ऋषि भक्त लेखक नहीं जाता रहा। इतिहास के इस पहलू पर श्री डॉ. धर्मवीर जी के अतिरिक्त किसी भी विद्वान् ने कभी दो शब्द कहे? और न लिखे।

मेरे इस कथन को कोई भी झुठला नहीं सकता। पूज्य उपाध्याय जी से लेकर महाशय कृष्ण जी, आचार्य श्री उदयवीर जी, मीमांसक जी, पं. भगवद्दत्त जी, श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी और महात्मा आनन्द स्वामी जी के अनेक पत्र इसकी साक्षी के रूप में मैं दिखा सकता हूँ। कभी ये सब पत्र छप सके तो आर्यसमाज इन पत्रों पर गौरव करेगा।

किसने पं. भगवद्दत्त जी का अन्तिम भाषण सुना व छपवाया? किस आर्यलेखक को जीवन की अन्तिम वेला में महात्मा आनन्द स्वामी ने आग्रह करके पास बुलाया। घण्टों केवल मुझसे चर्चा करके समाज सेवा के कई महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपे। श्री अमर स्वामी जी लिखित प्रादेशिक सभा के इतिहास को जाँच कर देखकर उसे शीघ्र प्रकाशित करवाने में सहयोग करने का आदेश दिया। मैं क्या करता? बाबू दरबारीलाल चाहता ही नहीं था कि श्री आनन्द स्वामी जी तथा श्री अमर स्वामी जी की यह इच्छा पूर्ण हो कि उस इतिहास का मुद्रण प्रकाशन जैसा मैं चाहूँ सो हो सके।

स्वामी सत्यप्रकाश जी, स्वामी सर्वानन्द जी, आचार्य उदयवीर जी, श्रद्धेय युधिष्ठिर जी मीमांसक ने अपनी पिछली आयु में मुझसे कितने साहित्यिक कार्य लिये? इस विषय में समाज में किसी ने कुछ लिखा ही नहीं, परन्तु यह लुकी छिपी सेवा तो है नहीं। मैं उन सब महापुरुषों का हृदय की गहरी गहराईयों से ऋणी हूँ जिनकी छत्रछाया में और जिनकी पुण्य प्रेरणा से मैंने बहुत कुछ ठोस, महत्त्वपूर्ण व प्रेरणाप्रद साहित्य दिया।

विधर्मियों विरोधियों के आर्यसमाज विषयक निन्दापरक साहित्य के प्रतिपाद में आर्यसमाज ने क्या-क्या लिखा है? इस विषय पर मुझसे ठोस और बेजोड़ सामग्री लिखवाने का विचार केवल स्वामी सत्यप्रकाश जी को ही सूझा। मैं इन पूजनीय विद्वानों की प्रेरणाओं तथा प्यार को कैसे बिसार सकता हूँ? लिखने को और भी बहुत कुछ है, परन्तु फिर कभी इस विषय में लेखनी चलाऊँगा।

वेद सदन, नई सूरज नगरी, अबोहर, पंजाब

बुद्धि और शास्त्रबोध

श्री रामनिवास 'गुणग्राहक'

मुझे संस्कृत का एक श्लोक सच में बड़ा रोचक और प्रेरक लगा। बड़ी सरल भाषा में कवि ने रोचक और प्रेरक शैली में जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी सीख देने का सफल प्रयास किया है। हाँ उस कवि की सफलता पाठक व श्रोताओं की 'गुणग्राहक' प्रवृत्ति पर भी निर्भर करती है कि वो उसे कितना आत्मसात् कर पाता है। श्लोक कहता है-

''मतयो यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वानराः।
शास्त्राणि यत्र गच्छन्ति, तत्र गच्छन्ति वै नराः।।''

अर्थात् जो अपनी बुद्धि के अनुसर चलते हैं, कार्य-व्यापार करते हैं, वे बन्दर कहलाते हैं है न आश्चर्य की बात कि बुद्धि के अनुसार काम करने वाले को बन्दर कहा है। तो क्या हम बुद्धि से काम लेना बन्द कर दें। अरे नहीं, अगली पंक्ति का अर्थ सुनो, अगली पंक्ति में कहा है- मनुष्य वो ही है, जो शास्त्रों के अनुसार चलते हैं, कर्म करते हैं। शास्त्रों को समझने में भी तो बुद्धि की आवश्यकता होगी न बुद्धि से काम लेना बन्द नहीं करता, बल्कि अपनी बुद्धि को शास्त्रों के ज्ञान से परिपुष्ट करके शास्त्र ज्ञान के अनुसार कर्म करना ही उत्तम है, ऐसा करने वाला ही मनुष्य कहलाता है। महाभारत में कहा है-

'यद्-यद् आचरति शास्त्रं, अर्थं सर्व प्रवृत्तिषु।
यस्य-यस्य हि अनुष्ठानं तत्र-तत्र निरामयम्।।'

अर्थात् शास्त्र (सर्व प्रवृत्तिषु) सब कार्यों के सम्बन्ध में जो-जो व्यवस्था देते हैं, उनका अनुसरण उसी रीति से करना ही सब कार्यों की सफलता का आधार है। ऐसे कर्मों में कोई विघ्न नहीं आता श्रीकृष्ण भी तो गीता में यही कहते हैं-

यः शास्त्रविधिं उत्सृज्य वर्तते कामचारतः।
न स सिद्धिं अवाप्नोति, न सुखं न परागतिम्।।

(१६.२३)

अर्थात् जो शास्त्र विधि को छोड़कर मनमाने ढंग से कार्य करते हैं। वे कभी सफलता को प्राप्त नहीं होते, ऐसे मनमाने कार्यों से उन्हें सुख नहीं मिलता और न उनकी उत्तम गति होती है। शास्त्र-ज्ञान की महत्ता रोचक और प्रेरक शैली में प्रस्तुत करने वाला श्लोक अपनी बुद्धि से, मनमाने ढंग से काम करने वाले को बन्दर कहता है और शास्त्रानुसार काम करने वाले को ही मनुष्य कहता है, उसकी पुष्टि महाभारत और गीता में देखी जा सकती है। बुद्धिमानों को चाहिए कि शास्त्रों का पठन-पाठन करें और शास्त्र-ज्ञान के अनुसार ही जीवन जियें।

क्यों करें ऐसा?- आज के मनुष्य के मन-मस्तिष्क में प्रश्न खड़ा होता है कि हम भी पढ़े-लिखे हैं, हम अपनी बुद्धि से काम क्यों न लें? शास्त्रों में ऐसा क्या है कि हम उनका अनुकरण करें? प्रश्न उचित भी है, जब तक हमें उपयोगिता न बताई जाए किसी के लाभ न बतायें जाएं तब तक उसमें रुचि वा प्रवृत्ति नहीं होती। तो सुनो! सब मनुष्यों का बुद्धि-विकास एक समान नहीं दिखता। सोचने-विचारने और निर्णय लेने की योग्यता भी समान नहीं दिखती। ऐसे में सब अपने-अपने ढंग से काम करेंगे तो उनके परिणाम एक जैसे नहीं हो सकते। लोक-व्यवहार में भी हम बड़ों से या बुद्धिमान् सज्जनों से राय और सुझाव लेते ही हैं। वे अपने विवेक और बुद्धि के अनुसार जो उचित समझते हैं, हमें बताते हैं। सिद्धान्त यह है कि लोक व्यवहार में भी हम अपने से अधिक बुद्धिमान् समझदार और अनुभवी लोगों के ज्ञान-अनुभव का लाभ लेते रहते हैं। हमारे शास्त्रकार बुद्धि, विवेक, ज्ञान और अनुभव में हमसे बहुत बड़े थे। वे ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोत वेदों की ज्ञान-परम्परा से जुड़े हुए थे। महर्षि यास्क अपने निरुक्त शास्त्र में बहुत ही

उपयोगी बात लिखते हैं- ''**पुरुषविद्या अनित्यत्त्वात् कर्म सम्पत्तिः मंत्रो वेदे।।**'' (नि. १.२.२) अर्थात् मनुष्यों की विद्या अनित्य है, घटती-बढ़ती रहती है, अतः उस पर भरोसा करना ठीक नहीं। तो भरोसा किस पर करें? यास्क कहते हैं कि कर्मों के सम्बन्ध में संसार के बनाने-चलाने वाले परमात्मा द्वारा दिये गये, वेदमन्त्रों पर ही विश्वास करना चाहिए। हम सब यह जानते, मानते और विश्वास करते हैं कि हमारे कर्मों का फल परमात्मा ही देता है। कुछ पेटू पण्डितों ने ग्रह, नक्षत्र व राशि आदि को कर्मों का आधार बताकर भोले-भाले लोगों को ठगने का धन्धा चला रखा है। यह एक पाखण्ड है, अन्धविश्वास है, ठग विद्या है। सच यह है कि हमारे सब कर्मों का न्यायपूर्वक फल परमात्मा ही देता है। वह हमारे सब कर्मों को भलीभांति जातना है और हमारे अच्छे-बुरे कर्मों का सुख-दुःख के रूप में न्यायपूर्वक फल देता है। हमारे सब कर्मों को जानने और न्यायपूर्वक फल देने वाले परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही वेद के द्वारा सब कर्मों का ज्ञान हमें दे दिया था। उसी वेदज्ञान को आत्मसात करके हमारे ऋषि-मुनियों ने विविध शास्त्रों की रचना करके सरल और व्यावहारिक भाषा में हमें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विस्तृत ज्ञान देकर हम पर बहुत बड़ा उपकार किया है। इसलिए हमें अपनी बुद्धि उन शास्त्रों के ज्ञान को सीखने-समझने में लगानी चाहिए और उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए।

वेद ईश्वरीय ज्ञान- जब यह संसार परमात्मा ने बनाया और सबसे अन्त में मनुष्य को उत्पन्न किया तो मनुष्य को इस संसार में कैसे रहना है, क्या करना है, क्या खाना-क्या पीना है- इस प्रकार का ज्ञान उसे तभी दे दिया था। देखा यह जाता है कि मनुष्य के अतिरिक्त किसी भी प्राणी को आज भी कुछ सिखाने-समझाने की आवश्यकता नहीं है। सभी बिना किसी से कुछ भी सीखे-समझे अपना काम चलाते रहते हैं। बैया को घोंसला बनाना कोई नहीं सिखाता तथा गाय के बछड़े को पानी में तैरना किसी से सीखना नहीं पड़ता, मगर एक मनुष्य को आज भी सब कुछ सीखना पड़ता है। शास्त्र की भाषा में कहते हैं कि मनुष्य के अतिरिक्त सभी प्राणियों के पास स्वाभाविक ज्ञान है। वे अपने स्वाभाविक ज्ञान से ही अपने जीवन की हर आवश्यकता पूरी कर लेते हैं, मगर मनुष्य के पास इतना स्वाभाविक ज्ञान नहीं होता कि वह अपना काम चला सके। उसे यहाँ सब कुछ सीखना-समझना पड़ता है। दूसरों से प्राप्त ज्ञान को शास्त्र नैमित्तिक ज्ञान कहता है। मानव को यहाँ मूल रूप से तीन स्तरों पर ज्ञान प्राप्त होता है। वो तीन स्तर हैं- माता, पिता और आचार्य। बचपन में वह माता-पिता आदि परिवार से बोलना और वस्तुओं को समझना सीखता है। इसके बाद वह आगे का ज्ञान विद्यालय जाकर गुरु से प्राप्त करता है। प्रश्न होता है कि आज ता हम माता, पिता व आचार्य से ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं मगर मानव की पहली पीढ़ी को वह ज्ञान कहाँ से और कैसे मिला होगा? आज का विज्ञान तो मानव की उत्पत्ति नहीं मानता। विज्ञान कहता है कि मानव तो अमीबा का एक विकसित रूप है। यह विज्ञानवादियों का सबसे बड़ा अन्धविश्वास है। विकासवाद विज्ञान का सिद्धान्त नहीं एक कोरी कल्पना है। विज्ञान वाले जानते हैं कि चार्ल्स डार्विन के साथ विकासवाद को नकार दिया था। उस पुत्र जार्ज डार्विन के साथ विकासवाद पर काम कने वाले डॉ. रसेल वालेस ने ही विकासवाद को नकार दिया था। उसका पुत्र जार्ज डार्विन खुले में स्वीकार करता है कि जीवन का प्रश्न आज भी उतना ही अनसुलझा है जितना पहले था। जीवन का प्रारम्भ और भाषा की उत्पत्ति को लेकर विज्ञान आज भी अनुमानों से काम चला रहा है। सच यह है कि मानव ही नहीं सम्पूर्ण प्राणी और यह संसार आज जैसा है, वैसा ही परमात्मा ने आज से लगभग एक अरब छियानवे करोड़ वर्ष पहले बनाया था। मनुष्य की पहली पीढ़ी के चार पवित्र आत्माओं- अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और

अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। मानव को सबसे पहले परमात्मा ने ज्ञान दिया इसी कारण योगदर्शन के ऋषि परमात्मा को प्रथम गुरु बताते हुए लिखते हैं- '**स पूर्वेषाम् अपि गुरू कालेनान वच्छेदात्**।' अर्थात् वह परमात्मा ही मानव मात्र का सबसे पहला गुरु है। ऐसा गुरु जो काल की सीमा में नहीं आता। अर्थात् वह जब-जब सृष्टि बनाता है, तब-तब वेद के रूप में ज्ञान देता है तथा उसका ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मानव के काम आता रहता है। उसी वेदज्ञान से ज्ञान पाकर ऋषि मुनियों ने सर्वशास्त्र की रचना की है। महाभारत में कहा है-

'**पितृ देव मनुष्याणां, वेदश्चक्षु सनातनम्**'

अर्थात् पितरों, देवों और सामान्य मनुष्यों का सदा से वेद ही मार्गदर्शक रहा है और देखिये- "**नि:सृतं सर्वशास्त्रं तु वेद शास्त्रात् सनातनात्**" अर्थात् समस्त ऋषि-मुनियों के बनाये गये शास्त्र वेद से ही ज्ञान लेकर बनाये गये हैं। हाँ ध्यान रखने वाली बात यह है कि आज शास्त्रों के नाम पर पुराण आदि ग्रन्थों का इतना बोलबाला है कि आज के कथावाचक वेद और ऋषि मुनियों के वेदोक्त शास्त्रों का नाम तक नहीं लेते। इसलिए कथावाचकों द्वारा शास्त्र कहे जाने वाले पुराणों और अन्य आधुनिक ग्रन्थों को शास्त्र मानकर उनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। वेद धर्म ग्रन्थ होने के साथ-साथ समस्त ज्ञान-विज्ञान के भी मूल स्रोत है। वेदों में ऐसा कुछ नहीं, जो विज्ञान के विरुद्ध हो, तर्क के विरुद्ध हो, न्याय के सिद्धान्तों के विरुद्ध हो अथवा माननीय सद्गुणों और सदाचार के विरुद्ध हो। किसी शास्त्र कहलाने वाले ग्रन्थ में सृष्टि नियमों के विरुद्ध है, विज्ञान के विरुद्ध है, तर्क और न्याय के विरुद्ध है वह सब वेद विरुद्ध होने से शास्त्र नहीं माना जा सकता। ऐसे किसी ग्रन्थ की बात मानने से पहले अपनी बुद्धि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए क्योंकि बुद्धि का सदुपयोग शास्त्रों के सत्य अर्थ समझने में ही है।

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर महर्षि दयानन्द सरस्वती की २००वीं जन्म-जयन्ती शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में ५० प्रतिशत की छुट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये
विवाह पद्धति	२०
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	०२
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०२
समाधी	१००
सामवेद शतक	३०
जिज्ञासा विमर्श	१००
इतिहास प्रदूषण	१००
इतिहास साक्षी	५०
वेदामृत	५०
सत्यासत्य निर्णय	२५
The Book of Prayer	35
Kashi Debate	20
A Critique of Swami Naryan Seet	20
An Examination of Vallabh Seet	20
Five Great Rituals of The Day	20
Bhramaccheden	25
Bhranti Nivarana	35
Atmakatha	20
Gokarunanidhi	12
Dayanand Interparetation of Vedas	05
संध्या सुरभि कलेण्डर	३५
महर्षि दयानन्द की शिक्षाएँ कलेण्डर	२५
The Pre Islamic Religious of Arabia	20
वेदमाता	१००
शंका समाधान	७०
ईश्वर	१५०
नवयुग की आहट	६०
वैदिक इस्लाम	१०
पं. आत्माराम अमृतसरी	१००
इतिहास बोल पड़ा	१००
मृत्यु सूक्त	२००
सत्यार्थ सुधा	१५०

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-
दूरभाष-0145-2460120, चलभाष- 7878303382

ज्ञानसूक्त - २५

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणा संयजन्ते सखायः
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोह ब्रह्माणो विचरन्त्युत्वे।

हम इस वेद ज्ञान की चर्चा के प्रसंग में ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ७१वें सूक्त के आठवें मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। इसका ऋषि बृहस्पति और ज्ञान इसका देवता है। अर्थात् इस मन्त्र में ज्ञान के विषय में चर्चा की गयी है।

पीछे के मन्त्रों में हमने एक बात देखी थी कि परमेश्वर ने इस संसार में रहने वालों के लिए संसार का समस्त ज्ञान प्रदान किया है, क्योंकि यह संसार मनुष्य के लिए उपयोगी है, मनुष्य इसका उपभोक्ता है, उसका जीवन इस संसार के साधनों से चलता है तो उसे इसका ज्ञान होना चाहिए। हम जिन भी वस्तुओं को काम में लेते हैं, उनको यदि हम जानते न हों, उनके हानि-लाभ से हम परिचित न हों तो हम उसका उचित उपयोग नहीं कर सकते। इसलिए इस संसार में यदि मनुष्य या प्राणी बना है, तो उसके लिए क्या उपयोगी है? क्या आवश्यक है, क्या अनुपयोगी है, इसका ज्ञान देना परमेश्वर का कर्त्तव्य है, क्योंकि संसार का बनाने वाला भी वही है और इस प्राणी-मनुष्य जगत् का बनाने वाला भी वही है। तो इन दोनों के सम्बन्ध का ज्ञान भी उसे ही है। इसलिए यदि वह इन दोनों को बनाएगा तो इन दोनों के सम्बन्ध का ज्ञान भी वही देगा। इसमें अन्तर कहाँ आता है कि संसार में बहुत मनुष्य हैं, बहुत प्राणी हैं और संसार भी बहुत बड़ा है और इसमें बहुत वस्तुएँ हैं। संसार बड़ा है और अपेक्षा से मनुष्य और प्राणी छोटा है। तो संसार की सारी वस्तुएं या आवश्यकतायें एक व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं रखतीं, क्योंकि वह समस्त नहीं है, इसलिए समस्त का ज्ञान भी उसके लिए अनिवार्य नहीं है। जितने की उसके लिए उपयोगिता है, जितने की उसे आवश्यकता है उतना ज्ञान उसे चाहिए। तो इस सिद्धान्त के कारण, इस व्यवस्था के कारण, संसार में जितना भी ज्ञान है, वह किसी एक व्यक्ति के पास न है, न सम्भव है।

जब समस्त ज्ञान एक व्यक्ति के पास सम्भव नहीं है, तो किसके पास कितना हो, यह उसकी आवश्यकता पर निर्भर करता है। उसकी आवश्यकतायें अलग-अलग होती हैं और घटती और बढ़ती भी रहती हैं। इसलिए उसका ज्ञान भी घटता और बढ़ता रहता है। इतना ही नहीं उसके ज्ञान प्राप्त करने के जो उपाय और साधन हैं, वे भी इसी के अनुसार घटते-बढ़ते रहते हैं। एक व्यक्ति जिन परिस्थितियों में रहता है उनसे वह बहुत भली प्रकार अवगत होता है। यदि नई परिस्थितियों से वहाँ आता है, तो उन परिस्थितियों से अपरिचित होने के कारण उसका व्यवहार एक ज्ञानवान् की तरह नहीं होता। लेकिन उस परिस्थिति से अवगत व्यक्ति जितनी अच्छी तरह से वह समझता है उतना दूसरा नहीं सीख पाता। तो हमारे जो

पुराने संस्कार, पुराना ज्ञान, पुराना संग्रह हमारे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार में रहता है, उसके कारण से हमारे पास धारण करने की योग्यता अलग-अलग है और दूसरी यह कि हमारी जो परिस्थिति और आवश्यकता है, वो भी भिन्न-भिन्न है। हमारी भिन्न परिस्थितियों के कारण हमारा ज्ञान भिन्न है। हमारी उपयोगिता आवश्यकता भी अलग है, इसलिए भी भिन्न है तो इस कारण से संसार के प्रत्येक व्यक्ति का, प्रत्येक प्राणी का जो ज्ञान है वह एक-दूसरे से बहुत कम, अधिक और अलग-अलग तरह को होता है। इस बात से, जो इन मन्त्रों की चर्चा में हम देख रहे हैं, वो अन्तर जो है ज्ञान प्राप्ति का उसका महत्त्व क्या है, यह हमने पिछले मन्त्रों में देखा। हमने देखा, यदि ज्ञान समान भी दिया जाए तो भी ग्रहणकर्त्ता के संस्कार के कारण, शक्ति व परिस्थिति के कारण वो उतना नहीं ग्रहण कर पाता जितना दूसरे कर लेते हैं। ज्ञान के जो साधन पिछले मन्त्र में बताए, आँख-कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, वो ईश्वर ने सबको समान दी हे। किन्तु ग्रहण करने का जो सामर्थ्य है वो अलग-अलग होने से, हम उसका परिणाम अलग-अलग देखते हैं। एक कक्षा के विद्यार्थियों को गुरुजी एक तरह से ही पढ़ाते हैं, किन्तु परीक्षा के परिणाम को देखते हैं तो कोई फेल हो जाता है, कोई प्रथम श्रेणी, कोई द्वितीय श्रेणी में अंक लेकर के उत्तीर्ण होता है।

तो ऐसे जो ज्ञानवान् लोग हैं, उनके कारण से संसार में दो परिस्थितियाँ बनती हैं। एक तो जिनके पास ज्ञान है या जिनके पास पर्याप्त ज्ञान नहीं है या ज्ञान बिल्कुल कम है। तो ऐसे जो दो तरह के लोग संसार में, समाज में हैं, उन दो तरह के लोगों की जो परिस्थिति है, आपस का सम्बन्ध है, वो इस मन्त्र में चित्रित किया गया है। यहाँ बताया गया है- हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु अर्थात् हमारी जो योग्यतायें हैं, क्षमतायें हैं, उनको हमने भली प्रकार से संस्कृत किया है। जैसे एक बढ़ई पेड़ की लकड़ी को लाता है, पहले उसे अपने हिसाब से काटता है, चीरता है, फिर उसके अन्दर सफाई लाता है, उसको घिसता है, वैसे ही जो ज्ञान वाले लोग हैं, जिनको ज्ञान प्राप्त करना है, वो जब ज्ञान प्राप्त करते हैं, तो ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने हृदय को संस्कृत करते हैं, उसको योग्य बनाते हैं और तब वे उसमें अपने ज्ञान को बढ़ा सकते हैं, संग्रहीत कर सकते हैं। तो हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणा संयजन्ते सखाय- इसका समाज में जो परिणाम होता है, वो ज्ञानवान् लोग इकट्ठे होते हैं, ज्ञानवान् लोग आपस में मिल-बैठकर चर्चा करते हैं और इस चर्चा की सबसे बड़ी विशेषता होती है कि ज्ञान के आदान-प्रदान से उनका ज्ञान बढ़ जाता है। यदि इसको मोटे रूप में हम समझें तो आचार्य चरक ने एक बात तो यह लिखी है कि जो ज्ञानवान् व्यक्ति होता है वो हर समय कुछ न कुछ सीखता है, सारा संसार उसके लिए गुरु के तुल्य होता है। कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमताम् आचार्यः शत्रुश्च अबुद्धिमताम् मूर्ख व्यक्ति किसी को अपना शत्रु समझता है, दुश्मन मानता है, लेकिन बुद्धिमान् व्यक्ति उसमें से भी कुछ ग्रहण कर लेता है। उसको उसमें से भी कुछ सीखने को मिल जाता है। तो आचार्य चरक ने एक बात लिखी है कि ज्ञान को बढ़ाने का एक उपाय है गुरु से पढ़ना, वहाँ उससे भी अच्छा उपाय है, जहाँ ज्ञानी लोग बैठते हैं, उनके साथ बैठना, क्योंकि ज्ञानी लोग बैठेंगे तो ज्ञान की चर्चा होगी। ज्ञान की चर्चा होगी तो विभिन्न विषय जो और किसी प्रसंग में नहीं आते, इस प्रसंग में निकलते हैं, खुलते हैं और वो ज्ञान मनुष्य को अनायास मिलता है। इसके साथ ही आचार्य चरक एक और बात कहते हैं - सामान्य रूप से जब कोई व्यक्ति किसी को सीखाता है तो वह उसकी पात्रता, आवश्यकता देखकर के उतना ही सिखाता है सिखाना चाहता है जितने की योग्यता आवश्यकता उसको उस पात्र में अनुभव होती है। लेकिन जब वह संवाद की स्थिति में होता है, विद्वानों के बीच में होता है, चर्चा का जब वह केन्द्र होता है, तो एक मनोविज्ञान यहाँ काम करता है। उस चर्चा में उसकी

इच्छा अपने समस्त ज्ञान को प्रकाशित करने की होती है, अपने को सर्वोपरि सिद्ध करने की होती है, अपने पक्ष को विजयी बनाने की होती है। तो इसलिए ऐसी स्थिति में जहाँ संवाद होता है, जहाँ विद्वान् लोग परिचर्चा करते हैं, किसी विषय पर विचार-विमर्श करते हैं, ऐसी सभाओं को तद् विद्य संभाषा परिषद् कहा गया है। अर्थात् उस विषय विशेष के जानकार, किसी समस्या पर विचार करते हों, किसी वस्तु के बारे में जानने का यत्न करते हों, तो ऐसी जो विद्वानों की सभा है, उसे संभाषा परिषद् कहते हैं और क्योंकि जिस-जिस विषय के सब जानकार होते हैं इसलिए तद् विद्य होती है अर्थात् उस विषय के जानने वाले ही सारे लोग बैठे हैं, उनकी जो परिषद् है तो तद् विद्य संभाषा परिषद् है। ऐसी परिषद् में जब कोई चर्चा होती है तो विद्वान् लोग अपना पूरा ज्ञान अपना पूरा सामर्थ्य, अपने सारे युक्ति प्रमाण वो अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए, स्पष्ट करने के लिए उपस्थित कर देते हैं। इसलिए जो व्यक्ति इन सभाओं में भाग लेता है, उपस्थित होता है, उसे अनायास ही ऐसे ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति हो जाती है जो नियमित पठन-पाठन में सम्भव नहीं है। एक तो इतने विद्वान् एक साथ विद्या में पढ़ते हुए होते नहीं हैं। संवाद में विद्वानों की संख्या बड़ी होती है और सभी का ज्ञान भिन्न-भिन्न कोटि का और भिन्न-भिन्न विषयों से जुड़ा हुआ होता है, ऐसी स्थिति में हमें जो निर्णय मिलता हे, वो बड़ा सार्थक होता है और उनका सबका जो ज्ञान और जो योग्यता है उसका अनायास और सहज लाभ श्रोता को, भाग लेने वाले को प्राप्त होता है।

इसलिए आचार्य चरक ने कहा है कि यदि आपको ज्ञान प्राप्त करना है, तो यह ठीक है कि आप गुरु से पढ़ें, शास्त्र का अवलोकन करें, मनन-चिन्तन करें, किन्तु यदि आपको कोई अवसर मिले विद्वानों के साथ बैठने का, उनकी चर्चा सुनने का तो आचार्य चरक कहते हैं कि वो हमारे ज्ञान को बढ़ाने का सर्वोत्तम उपाय होगा। हमारे ज्ञान के बढ़ने की जो गति है, वह इस परिषद् द्वारा सबसे अधिक होती है। अनेक तरह के ज्ञान के लोग वहाँ एकत्रित होते हैं और अपने ज्ञान-विज्ञान को प्रदर्शित, प्रकाशित करते हैं और हमें इतने सारे लोगों का ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता है। उसी बात को इस मन्त्र में कहा है- संयजन्ते सखाय: अर्थात् वो यज्ञ करते हैं, संयजन्ते, साथ बैठकर चर्चा करते हैं। वो चर्चा करके बात को स्पष्ट करते हैं। किसी ज्ञान की जो स्पष्टता है, जितना हम पढ़ते हैं, उस पढ़ने से भी अधिक मनन-चिन्तन करते हैं, उस मनन-चिन्तन से भी अधिक उसका प्रवचन करते हैं, दूसरे को बताते हैं, समझाते हैं, तब वास्तव में हमारा ज्ञान हमारे अन्दर स्पष्ट होता है तो यह जो क्रिया है, वह हमारा यज्ञ है। तो विद्वान् साथी लोग, साथ विद्वान् पढ़ने वाले लोग संयजन्ते सखाय: ऐसे सखा, ऐसे मित्र, ऐसे ज्ञानी बैठकर के जब ज्ञान यज्ञ करते हैं तो उस ज्ञान यज्ञ में उनकी जो दक्षता है वो बढ़ जाती है वो हृदा तष्टेषु, उनके यहाँ तक्षण क्रिया काम करती है, ज्ञान को पैना बनाती है, अच्छा बनाती है, प्रकाशमान बनाती है। तो मन्त्र की जो पहली पंक्ति कहते है- हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु अर्थात् जिनकी मानसिक योग्यताओं को परिष्कृत, संस्कृत कर दिया गया है, ऐसे जो विद्वान् लोग हैं, साथी लोग हैं, जब वे चर्चा में बैठते हैं, संयजन्ते सखाय: यज्ञ ब्राह्मणा, जो ज्ञान के प्राप्त करने वाले हैं, ज्ञान की इच्छा करने वाले हैं, ऐसे ब्राह्मण: सखाय:। जो ज्ञान को ही मुख्य मान करके, ज्ञान की ही अभिलाषा रखते हुए, वितण्डा, वाद करने के लिए, अनावश्यक बकवाद करने के लिए नहीं बैठे हैं। अपितु किसी विषय का विवेचन करने के लिए शंकाओं का समाधान करने के लिए, जब वो इकट्ठे बैठते हैं, मित्र भाव से बैठते हैं, तब उनका संयजन्ते सखाय:। ऐसे सखा लोग जब यज्ञ कर रहे होते हैं तो उस यज्ञ में विद्वानों की ही भागीदारी होती है, वे ही उस यज्ञ को सम्पन्न कर सकते हैं। इसलिए विद्वानों को एकत्रित होकर ज्ञान चर्चा करने की बात इस मन्त्र की पहली पंक्ति में कही है।

हमारी कुशलगढ़ (बांसवाड़ा) यात्रा

दिनांक २७-१२-२४ दिन शुक्रवार को प्रात: अग्निहोत्र तथा सत्संग के उपरान्त प्रात:राश करके ९:१५ बजे हम सात व्यक्ति २५१ कुण्डीय धर्मरक्षा महायज्ञ तथा सनातन संस्कृति महासम्मेलन कुशलगढ़ जनपद बांसवाड़ा राजस्थान के लिए भारी बरसात के बीच ऋषि उद्यान अजमेर से चले। यह वर्षा लगभग चित्तौड़गढ़ तक होती रही। हम यह मन में विचार कर रहे थे कि यदि कुशलगढ़ में वर्षा हुई तो कार्यक्रम में बाधा उत्पन्न होगी, किन्तु यह वर्षा चित्तौड़गढ़ से आगे नहीं थी। मध्याह्न का भोजन हम सबने निम्बाहेड़ा में चल रहे आर्य वीरांगना शिविर में किया। निम्बाहेड़ा आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता बड़े ही उत्साही तथा कर्मठ हैं। वहाँ की आर्यसमाज में माताओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। निम्बाहेड़ा के कार्यकर्त्ताओं से विचार-विमर्श करके बांसवाड़ा की ओर प्रस्थान किया।

सायंकाल लगभग साढ़े पाँच बजे बांसवाड़ा पहुँचे वहाँ पर एक होटल में हमारे ठहरने की सुन्दर व्यवस्था की गयी। वहीं पर आकर आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं ने हमारा भव्य स्वागत किया। रात्रि विश्राम के उपरान्त प्रात:काल नित्य कर्म करके दयानन्द सेवाश्रम का अवलोकन किया। वहाँ पर कोई भी व्यक्ति नहीं मिला, क्योंकि सभी लोग कुशलगढ़ कार्यक्रम स्थल पर व्यवस्थाओं में सहयोग करने के लिए पहुँच चुके थे। वहाँ से चलकर हम सभी कुशलगढ़ पहुँचे। वहाँ के चन्द्रशेखर आजाद स्टेडियम में विशाल पर्णकुटी से निर्मित भव्य आकर्षक यज्ञशाला बनायी गयी थी जिसमें २५१ (दो सौ इक्यावन) हवनकुण्ड बड़े ही व्यवस्थित ढंग से बनाये गये थे। २८-१२-२४ को निर्धारित समय पर यज्ञीय परिधान में १००४ (एक हजार चार) याज्ञिक जोड़े बड़े ही श्रद्धाभाव से उपस्थित हुए। ठीक समय पर यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक ने यज्ञ प्रारम्भ कराया। बड़े सुन्दर ढंग से यज्ञ में की जाने वाली प्रत्येक क्रिया का विवेचन तथा यज्ञ करने के लाभ बताए। सभी यज्ञमानों ने शान्तिपूर्ण वातावरण में बड़े ही उत्साह के साथ आहुतियां प्रदान कीं। इतने विशाल कार्यक्रम की तैयारी बहुत ही व्यवस्थित थी। कहीं पर भी कोई कमी नहीं छोड़ी गयी। प्रवेश द्वार पर कार्यकर्त्ता मस्तक पर चन्दन लगाकर आने वाले सभी आगन्तुकों का स्वागत कर रहे थे। बाहर से पहुँचने वाले सभी आगन्तुकों के ठहरने की समुचित व्यवस्था होटलों, मैरिज होम आदि में की गयी थी। भोजन व्यवस्था बहुत ही उत्तम की गयी थी। विद्वान् संन्यासियों के लिए अलग तथा क्षेत्रवासियों के लिए अलग। कार्यक्रम स्थल से ठहरने वाले स्थानों तक लाने ले जाने के लिए वाहनों की भी व्यवस्था की गयी थी जिससे सभी आगन्तुक समय पर कार्यक्रम में सम्मिलित होते रहे। महासम्मेलन का उद्‌घाटन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुरेशचन्द्र आर्य ने किया।

आयोजकों द्वारा विभिन्न विद्वानों तथा कार्यकर्त्ताओं का सम्मान मंच से उस क्षेत्र की पारम्परिक शैली में पगड़ी, जैकिट पहनाकर, धनुष बाण तथा प्रतीक चिह्न देकर किया गया। क्षेत्रीय विद्यालयों के विद्यार्थियों द्वारा आकर्षक नाटिकाओं तथा देशभक्ति से ओत-प्रोत गानों का मञ्चन किया गया। रात्रिकालीन सभा में ९:०० बजे से १२:०० बजे तक क्षेत्रीय भजन मण्डलियों के कार्यक्रम हुए। उस क्षेत्र में श्री गोविन्द गुरु का बहुत ही प्रभाव है जिन्होंने उस क्षेत्र के लोगों को संगठित करने में अपना जीवन लगाया था। श्री गोविन्द गुरु को सन् १८८२ ई. में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने उदयपुर में प्रेरणा दी कि आप आदिवासियों को संगठित करो। उस समय वहाँ के सामन्त वहाँ के लोगों का शोषण करते थे उनसे बेगार कराते थे। ऐसी विषम परिस्थितियों में श्री गोविन्द गुरु ने

वहाँ के लोगों का मार्गदर्शन किया। श्री गोविन्द गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी से प्रभावित होकर यज्ञ भी करते-कराते थे जिसे वहाँ पर धूणी कहते हैं। उस क्षेत्र के लोगों का रहन-सहन तथा खानपान सात्विक है। क्षेत्रीय भजन मण्डलियों के प्रचार प्रसार के कारण वहां पर ईसाई मिशनरी धर्म परिवर्तन करने में सफल नहीं हो सकी।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने भी उस क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दिया है। उस क्षेत्र में महर्षि दयानन्द सेवाश्रम स्थापित करके अनेकानेक लोगों को वैदिक विचारों से सम्पन्न किया जिसके कारण वहाँ पर शिक्षा का प्रचार-प्रसार सम्भव हुआ है। वहाँ के लोग माता शकुन्तला आर्या का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ ले रहे थे जिन्होंने उस क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

दिनांक २९-१२-२४ को दूसरे दिन का यज्ञ निर्धारित समय पर प्रारम्भ हुआ। आज यज्ञ में नये यजमानों ने यज्ञीय परिधानों से सुसज्जित बड़े ही श्रद्धाभाव से आहुतियां प्रदान कीं। अनेक लोगों ने अपने जीवन में यज्ञ, सन्ध्या तथा स्वाध्याय करने का संकल्प लिया। आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक ने अपने प्रेरणादायक उद्बोधन से लोगों को लाभान्वित किया। यज्ञ के उपरान्त पाण्डाल में मञ्च से कार्यक्रम हुआ। जिसमें अनेक विद्वानों तथा राजनेताओं ने सभा को सम्बोधित किया। कार्यक्रम का समापन महान् याज्ञिक स्व. महाशय धर्मपाल (एम.डी.एच.) के यशस्वी पुत्र श्री राजीव गुलाटी जी ने किया। पाँच हजार पिछड़े, गरीब, वंचित लोगों को कम्बल आयोजकों द्वारा वितरित किये गये। आर्यवीर दल के व्यायाम प्रदर्शन, लाठी, भाला, तलवार आदि का भव्य प्रदर्शन किया गया। यात्रा में श्री आम्मुनि, प्रधान परोपकारिणी सभा, श्रीमान् दायमा जी पूर्व आई.ए.एस., श्री नरेश कुमार धीमान् अध्यक्ष दयानन्दपीठ, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर, श्री वासुदेव आर्य, श्री सत्यनिष्ठार्य, श्री यतीन्द्र शास्त्री तथा श्यामसिंह राजावत थे।

अहंकार इक अन्धकार है

- डॉ. रामवीर

पता नहीं क्यों सब से बढ़ कर
लोग स्वयं को रहते आंकते
भूल से भी वे अपने मन की
गहन गुफा में नहीं झांकते।

'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्'
कहा महर्षि वेदव्यास ने
अपना मन ही गहरी गुहा है
जिसको व्यापा अन्धकार ने।

अहंकार इक अन्धकार है
जिसमें कुछ न दिखाई देता
बुध जन चेताते आए हैं
पर कोई विरला ही चेता।

यही कमी है जो लोगों में
प्राय: देखा पाई जाती
जन साधारण नेता साधु
ये बीमारी सबको सताती।

मैं सर्वोत्तम मुझ से उत्तम
अन्य कोई कैसे हो सकता
मन दर्पण में अपना मुखड़ा
शायद कुछ ज्यादा ही भाता।

अन्यों द्वारा ठगे जाने की
तो घटना होती है आम
मनुज स्वयं ही स्वयं को ठगने
का भी किया करता है काम।

किसी विचारक ने बतलाया
तीन रूप मनुज के होते
पहला जो वह खुद को समझता
दूजा जैसा लोग समझते।

तीजा रूप है असली वाला
जिसे न खुद न लोग जानते
उसे खोजने को ही मनीषी
दुनिया भर की खाक छानते।

८६, सैक्टर-४६, फरीदाबाद (हरि.)

एकता का आधार वेद

डॉ. रामनाथ वेदालंकार

कहते हैं एक नगर था, जिसमें सब लोग बड़े प्रेम से रहा करते थे। कोई किसी की उन्नति से ईर्ष्या नहीं करता था, कोई किसी से कलह नहीं था। ऐसा भाईचारा था कि देखने वाले चकित होते थे। पर शनैः-शनैः लोगों में द्वेष के भाव अंकुरित होने लगे और एक दिन वह नगर फूट, विद्वेष और कलह का अखाड़ा बन गया। अन्त में सब नगरवासी जब आपसी झगड़ों से बहुत तंग हो गये, तब उन्होंने परस्पर मिलकर निश्चय किया कि भविष्य में हम फिर प्रेमभाव से रहेंगे। ऐसा ही हुआ और वह नगर स्वर्ग सा सलोना बन गया। यह तो हुआ एक दृष्टान्त, पर वस्तुत: आज इस भूमि की ऐसी ही अवस्था हो चुकी है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की उन्नति को सह नहीं सकता। प्रत्येक देश दूसरे देश से भयभीत है कि कहीं वह आक्रमण न कर दे। सब अन्दर ही अन्दर अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ा रहे हैं। सर्वत्र बेचैनी है, हाहाकार है, हिंसा-पिशाची का नृत्य है, युद्ध है, गोलाबारी है, भय है, असन्तोष है। इस अवस्था से तंग आकर ही आज शान्ति-परिषदों व सुरक्षा- परिषदों के आयोजन होते हैं। अत: आज सर्वत्र वेदों की एकता, भ्रातृभाव व शान्ति के सन्देश के प्रचार की आवश्यकता है।

सबसे पहले एकता की भावना के लिए ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त (मण्डल १०, सूक्त १९१) की ओर हमारा ध्यान जाता है। इसके एक-एक शब्द में एकता के भाव भरे हैं-

सं समिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर।। १।।

हे सुखों की वर्षा करने वाली ऐक्य भावना की अग्नि, तेरे अन्दर बड़ी सामर्थ्य है। तू सबको मिला देने वाली है। अत: आज हम तुझे भूतल में प्रदीप्त करते हैं, तू हमें ऐश्वर्य प्रदान कर।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।। २।।

सब राष्ट्र और सब देशवासी मिल कर चलो, मिल कर बोलो. तुम्हारे मन एक हो जायें। जैसे श्रेष्ठ देव मिल कर अपने-अपने भाग को पूर्ण करते हैं, वैसे ही तुम भी करो।

समानो मन्त्रः समिति समानी,
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः,
समानेन वो हविषा जुहोमि।।३।।

तुम्हारा मन्त्र एक हो, समिति एक हो, मन एक हो, चित्त एक हो। तुम्हारे अन्दर मैं एकता के मन्त्र को फूंकता हूँ। एकता की हवि से मैं तुम्हें आहुत करता हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ४।।

तुम्हारा संकल्प एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों, तुम्हारा मन एक हो, जिससे तुम्हारे अन्दर पूर्ण एकता का भाव उत्पन्न हो जाये।

संज्ञान सूक्त की भावना से अपने मनों को अनुप्राणित करने के पश्चात् अब हम वेदों के अन्य प्रसंगों को लेते हैं। वेद सर्वभूतमैत्री का सन्देश देता हुआ कहता है-

दृते दृंह मा, मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। यजुर्वेद ३६/१८

सब व्यक्ति मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, मैं भी सब व्यक्तियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ, एवं हम सभी राष्ट्रों के लोग परस्पर मित्र दृष्टि रखें। हे दृढ़ता के देव प्रभो इस मैत्री-भाव में तु हमें दृढ़ता प्रदान कर।

अनमित्र नो अधराद् अनमित्र न उत्तरात्।

इन्द्रानमित्र नः पश्चाद् अनमित्र पुरस्कृधि।।

अथर्व ६.४०.३

दक्षिण दिशा में हमारा कोई शत्रु न हो, उत्तर दिशा में हमारा कोई शत्रु न हो, पश्चिम दिशा में हमारा कोई शत्रु न हो, पूर्व दिशा में हमारा कोई शत्रु न हो।

सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषम् कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

अथर्व ३.१०.१

हे मनुष्यो, तुम्हारे अन्दर सहृदयता, सांमनस्य और अविद्वेष के भाव मैं उत्पन्न करता हूँ। तुम एक-दूसरे पर ऐसी प्रीति रखो, जैसी गौ अपने नवजात बछड़े के प्रति रखती है।

वेद की दृष्टि में कोई मनुष्य किसी भी राष्ट्र का वासी हो, उसे सारी भूमि को ही अपनी माता समझना होता है।

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। अथर्व. १२.१.१२

भूमि मेरी माता है, और मैं उसका पुत्र हूँ।

नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्यै। यजु. ९.२२

माता पृथिवी को नमस्कार हो, माता पृथिवी को नमस्कार हो।

धरती पर सुख-शान्ति कैसे रह सकती है, इसके उपाय बताते हुए अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में कहा है- "**सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति**" अर्थात् सत्य ज्ञान, सदाचरण (ऋत), व्रतग्रहण (दीक्षा), आस्तिकता (ब्रह्म) और यज्ञ-भावना ये गुण हों तभी यह धरती धृत रह सकती है। इन पृथिवी धारक गुणों में एक गुण यज्ञ-भावना है। यज्ञ-भावना का अभिप्राय है पारस्परिक सहयोग की भावना जैसे शरीर के एक अंग का दूसरे अंग सहयोग रहता है तभी शरीर चलता है, ऐसे ही पृथिवी पर एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ और एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ सहयोग रहना चाहिए।

भूमि की किसी भी दिशा में हम चले जायें वहाँ हमारा अपमान न हो, धक्के न मिलें, किन्त प्यार-भरा आतिथ्य और स्वागत हो ऐसी प्रीति की भावना राष्ट्रों में होनी चाहिए।

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नु दिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव, मा विदन् परिपन्थिनो,
वरीयो यावया वधम्।। अथर्व.१२/१/३२

हे भूमि, न पश्चिम में, न पूर्व में न उत्तर में, न दक्षिण में तू हमें धक्का दे। तू हमारे लिए मंगलमयी हो। शत्रु होकर कोई हमारे पास न आये। विशाल मार-काट को तू दूर रख।

भूमि पर विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले और विभिन्न धर्मों को मानने वाले भी लोगों को आपस में एक घर के समान भ्रातृभाव से रहना चाहिए। यह वेद का सन्देश है। पृथिवी सूक्त में इस भूमि के लिए कहा गया है-

जनं बिभुती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।। अथर्व. १२.१.४५

यह भूमि भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले, भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों को घर के समान अपने अन्दर धारण करे। स्थिर खड़ी रहने वाली, न बिदकने वाली गौ जैसे दूध की धाराएँ प्रदान करती है वैसे ही यह अपने अन्दर विद्यमान ऐश्वर्य की सहस्रों धाराएँ प्रदान करती रहे।

आज प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को नीचा दिखाना चाहता है। शस्त्रास्त्रों की होड़ लग रही है, ऐसे-ऐसे संहारक अणु गोलों का आविष्कार हुआ है कि एक ही गोले से देश के देश विध्वस्त हो जायं, परन्तु वेद को यह स्थिति वांछनीय नहीं है। वेद कहता है-

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्।।

यजुर्वेद १६.३

हे रुद्र! हे शक्तिधर! तुझे तो गिरिशन्त और गिरित्र अर्थात् लोकरक्षक होना चाहिए- गिरिषु पर्वतवदुन्नतेषु राष्ट्रेषु शं कल्याणं तनोनीति गिरिशन्तः। भिरीन् राष्ट्राणि त्रायते इति गिरित्रः। तूने अपनी शक्ति के मद में आकर फेंकने के लिए जो इषु जो एटम शक्ति-हाथ में पकड़ी हुई है उसे शिव बना, उसका संसार के हित के लिए उपयोग कर। उससे तू निरीह पुरुषों का और जगत् का संहार मत कर।

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वम् उभयोरार्त्योर्ज्याम्।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप। यजु.१६/६

तूने जो धनुष की दोनों कोटियों पर डोरी चढ़ाई हुई है, उसे खोल दे और जो चलाने के लिए हाथ में बाण पकड़े हुए है, उन्हें दूर रख दे, अर्थात् जो युद्ध की तैयारी कर ली है उससे उपरत हो जा।

वेद के धनुष और इषु शब्द केवल तीर-कमान को ही सूचित नहीं करते, ये अपने अन्दर व्यापक अर्थ को लिए हुए हैं। धनुष का अर्थ है अस्त्र को गति देने वाला, उसे फेंकने वाला या छोड़ने वाला और इषु का अर्थ है जिसे गति दी जाती है, जिसे फेंका या छोड़ा जाता है, वह अस्त्र है एवं तोप धनुष है, तोप का गोला इषु है। बन्दूक धनुष है, बन्दूक की गोली इषु है। अणुबम को छोड़ने का साधन धनुष है, अणुबम इषु है। आज बड़े-बड़े वैज्ञानिक लोग एक से एक बढ़ कर संहारक शस्त्रास्त्रों के आविष्कार में लगे हुए हैं। वे ही वैज्ञानिक अपनी शक्ति को लोकहित के कार्यों की ओर मोड़ दें तो कितना उपकार हो। आज सब देशों को अपना करोड़ों रुपया सैन्य-शक्ति के विकास में लगाना पड़ रहा है, यही धन यदि जनहित के रचनात्मक कार्यों में लगता तो कितना लाभ होता। आज परस्पर विद्वेष की भावना से भरे हुए राष्ट्रों को एक दूसरे के प्रति भ्रातृभाव का हाथ बढ़ाते हुए वेद के शब्दों में कहना चाहिए-

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागा
शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु
न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु।।

अथर्व. १९.१४.१

आओ आज हम परस्पर गले मिल लें। अब तक जो कुछ ईर्ष्या कलह विध्वंस हमने किया उसकी परम्परा को समाप्त कर दें। अब तक भूमि पर, आकाश में समुद्र में कहीं भी जाते हुए हमारे मनों में एक भय और सन्देह विद्यमान रहता था कि कहीं यहाँ शत्रु की सुरंगे न बिछी हों, कही शत्रु के हवाई जहाज हमें न गिरा दें, कहीं शत्रु की पनडुब्बियाँ हमारे जलपोत को विनष्ट न कर दें। पर आज से इस प्रकार की आशंकाओं का हम अवसान कर दें। अपने मतों से द्वेष और भय को निकाल दें। द्यावा पृथिवी हमारे लिए उद्वेजक न रह कर कल्याण कर हो जायें।

आज देश-देश में उस वैदिक-भावना के प्रचार की आवश्यकता है। हमारा देश भारत प्रारम्भ से ही सब देशों के साथ मैत्री का इच्छुक रहा है। आज भी उसकी यही नीति है, परन्तु वेद के शान्ति और एकता के संदेश को उसने गलत नहीं समझा है। यदि चीन या अन्य कोई देश शत्रु बनकर उस पर आक्रमण करेगा तो वेद ही उसे शत्रु-दमन की प्रेरणा भी देता है। वह शत्रु का पूरी शक्ति से मुकाबला करेगा।

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु

अथर्व. १९.१५.६

सब दिशाएं हमारी मित्र हो जायें।

यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्तु,

अथर्व. १९.४६५

जो तुझ पर सैन्य आक्रमण करे, उसे तू पद्दलित कर दे। वेद की ये दोनों शिक्षाएँ साथ-साथ हैं। तो भी हमारा आदर्श है, विश्व-शान्ति, प्रेम, सहृदयता, सामनस्य, एकता तथा जगत् का कल्याण और हम उसके लिए प्रयत्नशील हैं।

महर्षि दयानन्द को समर्पित व्यक्तित्व-

श्री पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

जन्म तथा आरम्भिक शिक्षा- जन्म-१४ अक्टूबर, १८९२ ई., जन्म स्थान-मल्लूपोता, थाना-बंगा, जिला-जालन्धर (पंजाब)। माता श्रीमती परमेश्वरी देवी, पिता-श्री पं. रामदास सारस्वत, गोत्र-पाठक। ९ वर्ष की आयु तक माता-पिता दोनों का देहान्त हो चुका था। प्रारम्भिक शिक्षा विभिन्न स्थानों से निकट के रिश्तेदारों की सहायता से प्राप्त की। जौहल, जिला-लायलपुर (वर्तमान पाकिस्तान), गुरुदासपुर (पंजाब), मल्लूपोता, बंगा तथा छाना हाईस्कूल (जालन्धर) आदि स्थानों में रहकर १०वीं कक्षा उत्तीर्ण की। अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू आदि सभी विषयों में प्रथम श्रेणी के छात्र रहे। १९१२ ई. में ऋषि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ हाथ लगा, जिसकी गहरी छाप पड़ी। आर्षग्रन्थों- अष्टाध्यायी, महाभाष्य तथा वेद आदि पढ़ने की तीव्र लालसा जगी, एतदर्थ दृढ़ संकल्प लेकर साढ़े उन्नीस वर्ष की अवस्था में ५ जून (१९१२ ई.) की रात्रि को गृहत्याग कर दिया। गृहत्याग के अनन्तर कनखल पहुँचे। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के आचार्यों द्वारा यह कहने पर कि "अष्टाध्यायी से व्याकरण नहीं आता।" अष्टाध्यायी के प्रति पूर्ण निष्ठावान् ब्रह्मदत्त जी ने उत्तर दिया कि अष्टाध्यायी के ८ अध्यायों में ३२ पाद हैं। यदि सम्पूर्ण जीवन में एक पाद भी पढ़ दिया तो जीवन सफल समझूँगा। शेष अगले जन्म में पढ़ूँगा।

गुरु की प्राप्ति तथा अज्ञातवास- सौभाग्य से आपको स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जैसे ऋषि दयानन्द के भक्त-त्यागी-तपस्वी-बाल ब्रह्मचारी तथा आर्षग्रन्थों के परम अनुरागी गुरु मिल गये। स्वामी पूर्णानन्द जी ने गुरुकुल बदायूँ तथा काशी में शिक्षा पाई थी। आप गुरुकुल कांगड़ी में भी काशी के बड़े विद्वान् पं. काशीनाथ शास्त्री से अष्टाध्यायी आदि ग्रन्थ पढ़े थे। स्वामी पूर्णानन्द जी अष्टाध्यायी के १०० सूत्र प्रतिदिन पेड़ पर चढ़कर याद किये थे। ऐसे गुरु को पाकर ब्रह्मदत्त जी धन्य हो गये। गुरुजी ने ही उन्हें 'ब्रह्मदत्त' नाम दिया। पूर्व नाम तो 'लब्भुराम' था और पिताजी प्यार से 'मौजगोविन्द' कहकर पुकारा करते थे। गुरु के समान ही मेधावी ब्रह्मदत्त जी ने एक दिन में अष्टाध्यायी का एक पाद याद कर ३२ दिनों में ही पूरी अष्टाध्यायी कंठस्थ कर ली। स्वामी पूर्णानन्द जी परिव्राजक थे और उनकी वृत्ति यायावरी थी। अतः ब्रह्मदत्त जी अपने गुरुजी के साथ निरन्तर भ्रमण में रहते थे। कोई एक स्थान या पाठशाला स्वामी की थी नहीं और गुरु के आदेश से गृहस्थों के यहाँ से भिक्षा भी लेनी पड़ती थी। कनखल, मुरादाबाद, वृन्दावन, लखनऊ, रायबरेली, अमेठी, डलमऊ, मसूरी, देहरादून, कश्मीर, पठानकोट, लखनौती, गंगोह, मुल्तान, रघुराजगंज आदि नगरों की पैदल एवं रेलादि यात्रा में भिक्षावृत्ति से रहकर लगभग ६ वर्ष का समय (जून १९१२ से सितम्बर १९१८ तक) स्वामीजी के चरणों में रहकर व्यतीत किया। इस काल में गुरुजी से अष्टाध्यायी, वेदांग प्रकाश, उपनिषद् तथा ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का आपने गम्भीर अध्ययन और अनुशीलन किया। अन्त के लगभग ३ वर्ष डलमऊ, जिला-रायबरेली के गंगा तट पर गुरुजी के साथ एकान्तवास में रहकर अष्टाध्यायी, महाभाष्य (अंशतः) तथा निरुक्तादि की शिक्षा प्राप्त की। युवक ब्रह्मदत्त के अतिरिक्त स्वामी पूर्णानन्द जी के दो शिष्य और थे। १- ब्रह्मचारी प्यारेलाल, जो बाद में 'प्रियरत्न आर्ष' तथा संन्यस्त होकर स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक नाम से विख्यात आर्य विद्वान् हुए। २- ब्रह्मचारी अखिलानन्द जी-जिनका आगे चलकर जीवन का अधिकांश भाग झरिया (बिहार) में व्यतीत हुआ। आपने वाल्मीकीय रामायण का अनुवाद प्रक्षेपानुसन्धान पूर्वक किया है (प्रकाशक-रामलाल कपूर

ट्रस्ट, सोनीपत-हरयाणा)।

स्वामी पूर्णानन्द जी में एक भयंकर दोष था, वे महा क्रोधी थे। बात-बात में ब्रह्मदत्त जी को बहुत मारते-पीटते थे। सितम्बर १९१८ में ज्वरावस्था में ही ब्रह्मदत्त जी को बहुत पीट दिया। ब्रह्मदत्त जी गुरुजी से पृथक् हो गये। लगभग सवा वर्ष अज्ञातवास (ग्राम-अरनिया, जिला-बुलन्दशहर) में रहे। संग्रहणी या अतिसार रोग से पीड़ित थे। ठाकुर हरज्ञान सिंह (बाद में शास्त्रार्थ महारथी बने ठाकुर अमर सिंह जी के बड़े भाई) के संरक्षण में युवक ब्रह्मदत्त जी की बड़ी सेवा हुई। ठाकुर अमर सिंह के चाचा मुन्शी साँवल सिंह तथा महाशय चेतराम सिंह जी की चिकित्सा से रोग दूर हुआ और स्वास्थ्य ठीक हो गया। पं. ब्रह्मदत्त जी अपने गुरु के प्रियतम शिष्य थे। गुरु ने अपने प्रिय शिष्य की खोज में आकाश-पाताल एक कर दिया। परन्तु ब्रह्मदत्त जी पुनः उनके हाथ नहीं लगे। पाणिनि महाविद्यालय बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) के आचार्य श्री पं. विजयपाल जी ने मुझे यह बताया था कि शिष्य-वियोग में अन्ततः उनके गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी ने मध्ययुगीन प्रसिद्ध आचार्य कुमारिल भट्ट की भाँति 'तुषाग्नि' में जलकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। अपने गुरु की एवंविध मृत्यु के वृत्त को जानकर ब्रह्मदत्त जी हतप्रभ रह गये और अपने भावी जीवन को व्याकरण-अध्ययन के लिए ऋषि दयानन्द प्रदर्शित आर्ष प्रणाली को प्रचलित करने में ही समर्पित करने का संकल्प ले लिया। अपने गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी का प्रसंग आते ही गुरुजी (पं. ब्रह्मदत्त जी) भावुक हो जाते थे। इन्होंने अपने संक्षिप्त जीवनवृत्त में लिखा है-मेरे में जो अवगुण हैं वे मेरे हैं, यदि कोई गुण है वा जो ऋषि दयानन्द और आर्ष ग्रन्थों में गहरी भवित्त है, वह सब उक्त स्वामी जी की ही देन है। पं. ब्रह्मदत्त जी के सतीर्थ्य स्वामी ब्रह्ममुनि ने अपनी जीवनी 'निजजीवनवृत्तवनिका' में यह लिखा है- 'ब्रह्मचारी ब्रह्मदत्त जी गुरु जी के भक्त और अतिकृतज्ञ थे, जो बार-बार गुरु की मार खाते किन्तु सहन करते और अनेक बार उनसे पृथक् होकर पुनः निकट आ जाते।' जब पं. ब्रह्मदत्त जी ने यह पढ़ा तो वे स्वामी ब्रह्ममुनि जी से रूष्ट हो गये और कहा कि उन्होंने यह लिखकर ठीक नहीं किया। पं. ब्रह्मदत्त के द्वितीय सतीर्थ्य ब्रह्मचारी पं. अखिलानन्द जी (झरिया) कहा करते थे कि 'गुरुजी (स्वामी पूर्णानन्द जी) के सच्चे शिष्य पं. ब्रह्मदत्त जी हैं। उनके गुण-कर्म-स्वभाव पूर्णतः इनमें विद्यमान हैं।' आगे चलकर पं. ब्रह्मदत्त जी के जीवन में शिष्यों के प्रति कठोर अनुशासन के साथ-साथ अन्तस्तल में जो शिष्य-वत्सलता पाई जाती है उसे उनकी गुरुभक्ति का प्रभाव समझना चाहिए।

अध्ययन-अध्यापन तथा शुद्धि का कार्य- सन् १९२० ई. में वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के साधु आश्रम हरदुआगंज (पुल काली नदी), जिला-अलीगढ़ में पं. ब्रह्मदत्त जी के कारण ही लघुकौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी का सर्वथा बहिष्कार हुआ। अष्टाध्यायी क्रम से संस्कृत शिक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ। इस कार्य में पं. ब्रह्मदत्त जी को पं. शंकरदेव जी तथा पं. बुद्धदेव जी (धार निवासी) का भी सहयोग मिला। स्वामी सर्वदानन्द जी के निश्चयानुसार नवम्बर १९२१ ई. के अन्त में अमृतसर (पंजाब) से ४ मील दूर मजीठा रोड पर गण्डा सिंह वाला गाँव में 'विरजानन्द आश्रम' की स्थापना की गई। अमृतसर में यह आश्रम १९२५ ई. तक सफलतापूर्वक संचालित होता रहा। १९२३ ई. में लगभग १० दस मास ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने स्वामी श्रद्धानन्द तथा महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में भरतपुर-आगरा आदि स्थानों में मलकानों की शुद्धि का कार्य अपने सहपाठी पं. अखिलानन्द जी (झरिया) के साथ बड़ी ही सफलता से किया। मलकाने नाममात्र के मुसलमान थे। मूलतः ये राजपूत थे, हिन्दुओं के समान ही पर्व-त्यौहारों को हिन्दू-रीति से मनाते थे। मौलवी से निकाह पढ़ाने के पश्चात् हिन्दू रीति से भी अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह करते थे। इन्हीं लोगों को शुद्ध करके वापस राजपूतों में पूर्णरीति से सम्मिलित कर लिया गया। पं. ब्रह्मदत्त जी के

साथ हमेशा पाँच से दस छात्र रहते थे। जिन्हें वे आर्ष पद्धति से अष्टाध्यायी, काशिका आदि ग्रन्थ पढ़ाते थे। इसी क्रम में ब्र. युधिष्ठिर (जो आगे चलकर महावैयाकरण पं. युधिष्ठिर मीमांसक के नाम से प्रसिद्ध हुए) को उनके पिताश्री गौरीलाल आचार्य ने ३ सितम्बर १९२१ ई. को साधु आश्रम हरदुआगंज में प्रवेश करा दिया था। अन्य विद्यार्थी भी प्रविष्ट हुए जो आगे चलकर प्रख्यात आर्य विद्वान् और गुरुकुलों के आचार्य हुए। यह आश्रम जनवरी १९२६ में काशी में स्थानान्तरित हो गया, साथ में नौ छात्र थे तथा सहयोगी पं. शंकरदेव जी। काशी में संचालित कई अन्नक्षेत्र थे, जहाँ संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क भोजन की व्यवस्था होती थी। इन्हीं में से एक-दो अन्नक्षेत्रों में विद्यार्थियों तथा गुरुजनों की व्यवस्था हुई। एक धनी पंजाबी सज्जन जिनका जरी की साड़ियों का व्यवसाय था, उनसे कुछ धनादि की नियमित व्यवस्था होती थी। इसके आगे गुरुजी (पं. ब्रह्मदत्त जी) के जीवन का संक्षिप्त विवरण उन्हीं की 'स्वलिखित जीवन परिचय' से हम उद्धृत करते हैं- "दूसरी बार शुद्धि का कार्य १९२६ ई. से १९२८ ई. तक स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान पर पूज्य गुरुवर तिवारी जी की प्रेरणा एवं माननीय पं. मदनमोहन मालवीय जी की ५०० रूपये मासिक की सहायता से काशी के पण्डितों एवं संन्यासियों की अन्तरंग सभा द्वारा काशी हिन्दू शुद्धि सभा के मंत्री रूप में पं. केदारनाथ सारस्वत, स्वामी रामानन्द, म. म. पं. देवीप्रसाद जी कवि चक्रवर्ती आदि के सहयोग से कार्य किया, जबकि पं. गोपाल शास्त्री जी जेल में थे। इन सब में तथा आगे काशी में आचार्य श्री पं. शंकरदेव जी मेरे साथी रहे। काशी में पहली बार हम लोग कुछ छात्रों सहित जनवरी १९२६ ई. से अप्रैल १९२८ ई. तक रहे। क्षेत्रों में भोजन करते हुए अपने छात्रों को भोलाशाह के बगीचे (करणघण्टा) में पढ़ाते थे, और स्वयं व्याकरण के सूर्य श्री पं. देवनारायण तिवारी जी से सम्पूर्ण महाभाष्यादि पढ़ते रहे। श्री पं. ढुण्डिराज जी शास्त्री, पं. गिरीश जी शुक्ल तथा गोस्वामी दामोदर लालजी से प्राचीन दर्शनों का पूरा अध्ययन किया। सन् १९२८ से १९३१ ई. तक रामभवन अमृतसर में युधिष्ठिर आदि छात्रों को सम्पूर्ण महाभाष्य तथा निरुक्तादि पढ़ाता रहा। वैदिक वाङ्मय तथा प्राचीन इतिहास के मर्मज्ञ पं. भगवद्दत्तजी से रिसर्च का ज्ञान प्राप्त हुआ।

सन् १९३१ में महात्मा हंसराजजी की विशेष प्रेरणा से उनके सभापतित्व में पं. विश्वबन्धु शास्त्री एम.ए., पं. राजाराम शास्त्री तथा पं. चारुदेव शास्त्रीजी से 'निरुक्त और वेद में इतिहास' विषय पर लाहौर में ५ दिन शास्त्रार्थ किया। जिनमें समाधान पक्ष में मुख्य नाम ब्रह्मदत्त जिज्ञासु का था।[१] दुबारा काशी में सन् १९३१ से ३५ तक शीतला घाट पर 'विरजानन्द आश्रम' राजमन्दिर में पूर्ववत् छात्रों को महाभाष्यादि पढ़ाते हुए स्वयं भारत में अद्वितीय मीमांसक श्री चिन्नस्वामी शास्त्रीजी तथा उनके शिष्य पं. पट्टाभिराम शास्त्री द्वारा सम्पूर्ण मीमांसा के सब ग्रन्थ, महान् वैदिक विद्वान् पं. रामभट्ट रटाटेजी से श्रौत तथा अन्य विद्वानों से शेष सब दर्शन तथा साहित्य में मूल ग्रन्थों तथा वाक्यपदीय आदि का अध्ययन अनेक विद्वानों से काशी में किया। भर्तृहरिकृत महाभाष्य की टीका छपनी आरम्भ हुई, उसका सम्पादन किया।

सन् १९३६ से सन् १९४७ तक रावी तट शाहदरा लाहौर विरजानन्द आश्रम में छात्रों को अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त, दर्शन तथा वेद के अध्यापन के साथ-साथ ब्राह्मणग्रन्थों का विशेष अनुशीलन, यजुर्वेदभाष्यविवरण प्रथम भाग की तैयारी तथा छपना, परोपकारिणी सभा अजमेर सम्बन्धी अनेक कार्य करता रहा। इसी समय में देवतावाद विषय पर पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी के साथ कई मास तक लिखित शास्त्रार्थ हुआ। रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा विविध प्रकाशन कार्य हुआ। हैदराबाद सत्याग्रह में हमारे छात्र गये थे, कई मास तक आश्रम बन्द रहा। मार्च १९४७ से २३ अगस्त १९४७ तक, जबकि 'हिन्दू' लाहौर समाप्त हो चुका था, हम सब रावी तट पर ही रहे। अन्त में हिन्दू सैनिकों द्वारा ट्रकों में भर कर लाहौर कैम्प में लाये गये, और २८

अगस्त १९४७ को दैवयोग से बचकर अमृतसर पहुँचे। ५०-६० मन पुस्तकें, जिनमें सैकड़ों हस्तलेख भी थे, वे सब जला दिये गये। लगभग ९० मन पुस्तकें हम लोग ले आये थे।[२]

सन् १९२५ से १९२८ ई. तक पहले काशी में रहे, तथा सन् १९३१ से १९३५ तक दूसरी बार काशी में रहे। तीसरी बार १९४७ से २२ फरवरी सन् १९६३ ई. तक काशी मोतीझील में है, कल का पता नहीं। पाकिस्तान से निकलने को बाधित किये जाने पर अनेक स्थानों (गुरुकुल चित्तौड़गढ़, सरस्वती भवन अजमेर आदि) में 'केवल पाँच वर्ष के लिये स्थान मांगने पर भी सहयोग न मिलने पर मार्च सन् १९५० में पूरी तरह काशी में डेरा डाला। अक्टूबर सन् १९४७ से फरवरी १९५० तक शुद्धि आदि कार्यों में समय लगाया। अन्त में मार्च १९५० में मोतीझील काशी में डेरा डाला गया कि जब तक अन्यत्र कोई स्थिर प्रबन्ध न हो, यहीं रहा जावे। यहाँ अष्टाध्यायी महाभाष्य-निरुक्त-मीमांसा-श्रौत ब्राह्मण वेदादि का अध्ययन अध्यापन 'विरजानन्द आश्रम' के रूप में ५०) रू. मासिक किराये के मकान में चलता रहा।

तत्पश्चात् अगस्त १९५३ से 'पाणिनि महाविद्यालय' के रूप में पूर्ववत् चल रहा है, जिसमें भारत के प्रायः सभी प्रान्तों से संस्कृत के एम.ए., व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, शास्त्री, बी.ए., मैट्रिकादि, डाक्टरेट तथा व्यापारी आदि बहुत संख्या में शिविरों में तथा विद्यालय में पढ़ते रहे तथा इस समय भी पढ़ते हैं। जिनमें कोरिया अमेरिकादि विदेशी छात्रों के अतिरिक्त मुसलमान आदि भी आकर निःशुल्क संस्कृत पढ़ते रहते हैं। जाति वा आयु का कोई प्रतिबन्ध नहीं।

इस समय कई प्रौढ़ पठनार्थी बिना रटे अष्टाध्यायी पद्धति से संस्कृत तथा उसके व्याकरण का ज्ञान कर रहे हैं। कम से कम ४० दिन व ६ मास में गीता-रामायणादि समझने वा साहित्य, दर्शनादि पढ़ने का सामर्थ्य हो जाता है। द्वादशसु वर्षेषु व्याकरणं श्रूयते (१२ वर्ष में व्याकरण होता है) के स्थान में चतुर्षु वर्षेषु व्याकरणं श्रूयते (४ वर्ष में व्याकरण पूरा होता है) कराया जाता है। काशी के प्रमुख विद्वान् म. म. पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी आदि विद्वान् अष्टाध्यायी पद्धति पर मुग्ध हैं। काशी के विद्वान् चकित हैं और कहते हैं कि जिज्ञासुजी ने कोई देवी सिद्ध की हुई है। वह देवी अष्टाध्यायी ही तो है। साथ में महाभाष्य निरुक्त श्रौत-मीमांसा-दर्शनादि के पाठ भी चलते रहते हैं।''

व्यक्ति नहीं संस्था- संस्कृताध्ययन तथा वैदिक वाङ्मय के संरक्षण तथा संवर्द्धन के लिए पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने अपने जीवन में ऐसे पचासों विद्वान् शिष्य तैयार किये और उनमें यह भावना भरी कि संस्कृताध्ययन के लिए ऋषि दयानन्द प्रदर्शित आर्ष पद्धति की पाठशाला या गुरुकुल निरन्तर संचालित होने चाहिएँ। साथ ही व्याकरणादि वेदांगों तथा वैदिक वाङ्मय के संवर्द्धन में समर्पित विद्वानों की एक पीढ़ी तैयार की। उनके द्वारा प्रारब्ध यह परम्परा अद्यावधि सुष्ठु रीत्या प्रचलित है। आज देश में या कुछ अंशों में विदेश में भी अष्टाध्यायी क्रम से संस्कृत पठन-पाठन के बालकों वा बालिकाओं के जो गुरुकुल या विद्यालय चल रहे हैं उनका संचालन पूजनीय गुरुजी (पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु) के शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा ही किया जा रहा है। जैसे पाणिनि महाविद्यालय रेवली, (सोनीपत-हरयाणा), निगम नीडम् तेलंगाना, कन्या पाणिनि महाविद्यालय वाराणसी, आर्ष कन्या गुरुकुल नजीबाबाद, आर्ष कन्या गुरुकुल शिवगंज-सिरोही (राजस्थान), आर्ष गुरुकुल एटा आदि। गुरुजी द्वारा संस्थापित 'विरजानन्द आश्रम' की शताब्दी (१९२१-२०२१ ई.) भी मनाई जा चुकी है।

वैदुष्य और विनम्रता का मणिकांचन संयोग- पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी के वैदुष्य और विनम्र स्वभाव का वर्णन करते हुए व्याकरणशास्त्र के प्रख्यात पण्डित डॉ. रामशंकर भट्टाचार्य ने लिखा है- प्रधानतः जिज्ञासु जी एवं मीमांसक जी के साहचर्य से मुझमें सम्पूर्ण महाभाष्य के अध्ययन की इच्छा हुई। जिज्ञासु

जी और मीमांसक जी से पढ़ने से शब्दशास्त्रीय बातें अत्यन्त स्पष्ट हो जाती हैं। मुझे यह कहने में अणुमात्र संकोच नहीं है कि पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया अंश में जिज्ञासु जी की असाधारण दक्षता थी। पाणिनीय पद्धति के अनुसार स्वर संचार की प्रक्रिया व्याकरण पढ़ाने के समय काशी में सिखाई नहीं जाती।

इस प्रक्रिया का जो ज्ञान मुझमें है, वह मुझे मीमांसक जी से तथा जिज्ञासु जी से मिला था। उन्हें अनन्य साधारण विशेषज्ञ माना जाए तो अत्युक्ति न होगी। महाभाष्य की दीपिका टीका (भर्तृहरिकृत) के प्रारम्भिक अंश के सम्पादन में उन्होंने जो संपादकीय टिप्पणियाँ दी हैं, वे उनके अध्ययन की विशालता की सूचक हैं। यदि हो सके तो उनके द्वारा सम्पादित सम्पूर्ण अंश का पुनः प्रकाशन कर देना चाहिए। उनकी यजुर्वेद-विवरण टीका से मुझे सदैव स्वर वैदिक प्रक्रिया समझने में सहायता मिलती रहती है। जिज्ञासु जी की एक और विशिष्टता मैने स्वामी करपात्री जी द्वारा आयोजित वेद सम्मेलनों में देखी। विपक्षी अर्थात् सनातनी पण्डित के साथ शास्त्रार्थ में वे सदैव शान्त रहकर उत्तर देते थे। वे कभी भी कटु शब्दों का, उपहास-परिहासगमक वाक्यों का उच्चारण नहीं करते थे। उनकी मुख-मुद्रा बिगड़ती नहीं थी। उनकी यह शालीनता पण्डितों के लिए एक अनुकरणीय वस्तु है।[४] एक उच्चकोटि के विद्वान् ने पाणिनि महाविद्यालय वाराणसी के आचार्य पं. विजयपाल जी के सामने कहा था-"आश्चर्य है जिज्ञासु जी और मीमांसक जी व्याकरण और मीमांसा जैसे नीरस विषयों को जीवनभर कैसे पढ़ते-पढ़ाते रहे हैं।" महावैयाकरण पं. श्री युधिष्ठिर मीमांसक जी लिखते हैं-"पाणिनीय व्याकरण में चिरकाल से 'त्रिमुनि व्याकरणम्' (काशिकावृत्ति-२/१/१९) की प्रसिद्धि रही है-सूत्रकार पाणिनि, वार्त्तिककार कात्यायन एवं महाभाष्यकार पतंजलि। जब पाणिनीय व्याकरण का पठन-पाठनक्रम अष्टाध्यायी क्रम से लुप्त हो गया और महाभाष्य का पठन-पाठन भी अनावश्यक सा समझा जाने लगा, ऐसे काल में पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन-अध्यापन को पुनः प्रवृत्त करने और महाभाष्य के विलुप्त गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए विगत वर्षों में तीन ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने पाणिनीय व्याकरण के पुनः अपने स्वरूप में स्थापित करने के लिए महान् प्रयत्न किया। इनमें प्रथम हैं-गुरुवर परमहंस परिव्राजकाचार्य दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती तथा द्वितीय उनके शिष्य परमहंस परिव्राजकाचार्य वैदिक वाङ्मय के समुद्धारक और उसके अध्ययन पर बल देने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदार्थ बोधक वेद वेदांग आदि समस्त विद्याओं के आकर ग्रन्थों के साथ वेद के अध्ययन की जो पाठ-विधि निर्धारित की उसके अनुसार उस पाठविधि को प्रतिष्ठित करने और व्याकरण का अष्टाध्यायी क्रम से महाभाष्यांत अध्ययन अध्यापन करने के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन को समर्पित करनेवाले तृतीय श्री पूज्य पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। इन तीन महान् व्यक्तियों के प्रयत्न से 'त्रिमुनिव्याकरणम्' की प्रसिद्धि एक बार पुनः प्रतिष्ठित हुई। ये तीन मुनि वर्तमानकाल के हैं। अर्थात् 'त्रिमुनिव्याकरणम्' प्राचीन व अर्वाचीन काल में भी अपने शब्दों में यथावत् व्यवस्थित रहा। 'पूर्वपाणिनीया: अपरपाणिनीया:' (द्रष्टव्य-काशिका ६/२/१०४) के समान हम इसे 'पूर्वत्रिमुनिव्याकरणम्', 'अपरत्रिमुनिव्याकरणम्' के रूप में निरूपित कर सकते हैं।"

श्वेतवस्त्रों में संन्यासी- पूज्य गुरुजी का व्यवहार मधुर, निश्छल और आडम्बर से रहित था। उनके इस प्रकार के व्यवहार के कारण उनकी मैत्री देश भर में बिखरे सैकड़ों विद्वानों (जिनमें संस्कृत के शास्त्रीय वाङ्मय के अतिरिक्त हिन्दी-अंग्रेजी-विज्ञान-राजनीति-अर्थ-धर्म-संस्कृति आदि अनगिनत विषयों के विद्वान् समाविष्ट थे), अधिकारियों, नेताओं, प्राध्यापकों, उद्योगपतियों, संन्यासियों और साधारणजनों से थी। लगभग २०० फाइल वे स्वयं संभालते थे, पत्र व्यवहार स्वयं करते थे।'

अपने शिष्यों तथा भक्त जनों द्वारा अनेकश: पूछे जाने पर भी अपने जन्म स्थान, वर्ण-जाति तथा माता-पिता का नाम उन्होंने कभी नहीं बताया। एक सच्चे

संन्यासी जैसा उनका जीवन था, परिव्रजन तो उनके स्वभाव का अंग था। अत्यन्त सादगी भरी वेश-भूषा के साथ ही त्याग और वैराग्य उनमें कूट-कूट कर भरा था। यह एक संयोग की बात थी कि राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित होने के अवसर पर परिचय मांगा गया, जिसे न चाहते हुए भी आपने १९६३ के आरम्भ में लिखकर भेजा। आपके निधन के बाद उसकी रफकॉपी आपके कागजों में मिली। यदि राष्ट्रपति द्वारा परिचय न माँगा गया होता तो जनता इनके जीवन के पूर्वार्द्ध, जन्म स्थान, माता-पिता तथा वर्ण-जाति ज्ञान से भी अपरिचित ही रहती। राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् निजी तौर पर आपके वैदुष्य, कार्य और सामाजिक योगदान से भली-भांति परिचित थे। महामहिम द्वारा अनेकशः आग्रह के पश्चात् ही आप राष्ट्रपति-सम्मान प्राप्त करने के लिए तैयार हुए।

गुरुजी में जातीय अहंकार या पक्षपात लेशमात्र भी नहीं था। यद्यपि वे जन्म से ब्राह्मण थे, तथापि उन्होंने अपने जीवनकाल में कभी भी इस तथ्य को प्रकट नहीं होने दिया। एक बार आवागढ़ (एडा) के राजा (स्यात्-किशनपाल सिंह) ने आर्य विद्वानों को अपने यज्ञ में आमंत्रित किया। आमंत्रण पत्र में जन्मना ब्राह्मण होने के नाते ऋत्विग्-वरण का उल्लेख था। श्रीगुरुजी ने यज्ञ में सम्मिलित होने में असमर्थता प्रकट की, हेतु दिया ''जन्मना वर्णव्यवस्था वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है।'' राजा ने अपनी भूल का संशोधन किया और यज्ञ के समय कहा-'आर्यसमाज में सच्चा ब्राह्मण तो एक ही है-पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु।'' एक और अवसर पर रेलगाड़ी में यात्रा करते समय कुछ सनातनी महानुभाव श्रीगुरुजी के साथ शास्त्रीय शंका समाधान में व्याप्त रहे। अन्त में उनमें से किसी ने पूछा 'आपका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ है? श्रीगुरुजी सरल स्वभाव से उत्तर दिया जन्म से आपको क्या प्रयोजन है? मैं शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करता हूँ, इसी से समझ लें। वे महोदय बोले-ठीक है, आप किसी नीच जाति में जन्मे हैं, तथा प्रकट करने में संकोच करते हैं। श्रीगुरुजी ने सहजभाव से कहा-यह मेरे लिए गौरव की ही बात है कि आपके कथनानुसार नीच कुल में जन्म लेकर भी शास्त्र पढ़े और पढ़ाये।'' चौधरी चरण सिंह के साथ श्रीगुरुजी का घनिष्ठ परिचय उस समय से था जब वे गाजियाबाद में वकालत करते थे और आर्यसमाज के अधिकारी-सम्भवतः प्रधान थे। वे श्रीगुरुजी का बहुत आदर करते थे, कहते थे कि जीवन में केवल एक सच्चे ब्राह्मण का (पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी) दर्शन किया है।''

प्रसिद्ध आर्यविद्वान् आचार्य विश्वश्रवाः मात्सर्यवश आपके विरोधी हो गये थे। आर्य महासम्मेलन मेरठ (१९५१ ई.) में आयोजित वेद सम्मेलन के गुरुजी अध्यक्ष थे।

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के मंत्री जी ने आपसे अध्यक्षीय भाषण की प्रार्थना की। तभी आचार्य विश्वश्रवाः जी ने हाथ से माइक छीन लिया और चिल्लाकर बोले ऋषिद्रोही को बोलने नहीं दिया जायेगा। विशाल पाण्डाल श्रोताओं एवं दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था और विद्वन्मण्डल मंच की शोभा बढ़ा रहा था, सभी अवाक् रह गये। परन्तु गुरुवर शान्त गम्भीर प्रसन्न मुद्रा में अविचलित अपने आसन पर विराजमान रहे। वातावरण शान्त होने पर पूज्य गुरुवर अत्यन्त विनीत भाव से संन्यासियों, विद्वानों और आर्य जनता का सम्बोधित करके वेद विषय पर स्वाभाविक रूप से बोलने लगे, मानो कुछ हुआ ही नहीं। उनके विनीत भाव और शिष्ट व्यवहार से सम्पूर्ण सभा बहुत प्रभावित हुई। बाद में यही विद्वान् आचार्य विश्वश्रवाः ने गुरुजी को पत्र लिखकर निवेदन किया कि मेरे पुत्र का उपनयन संस्कार आप करा दें। साथ में ब्राह्मण ग्रन्थ का एक वचन भी उद्धृत किया जिसमें यह कहा गया है कि 'यज्ञोपवीत संस्कार विद्वान् व्यक्ति से ही कराना चाहिए अविद्वान् से नहीं। क्योंकि जिसका गुरु अविद्वान् हो वह अन्धकार में ही गिरेगा।' गुरुजी ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए उनके घर जाकर बालक का उपनयन संस्कार प्रसन्नतापूर्वक कराया।,

श्रीगुरुजी की यज्ञ-निष्ठा अनुपम थी। अपनी

युवावस्था में भी संध्या अग्निहोत्र का उल्लंघन नहीं होने देते थे। प्रौढ़ावस्था में अपने स्थान पर ही नियमत: इसका अनुष्ठान करते थे और छात्रों से कराते थे। वे कर्मकाण्डीय विधियों पर सूक्ष्म दृष्टि रखते थे, स्वल्प त्रुटि होते ही टोक देते थे। महात्मा प्रभु आश्रित जी और उनकी भक्त-मण्डली को भी शास्त्रीय रीतियों एवं मर्यादाओं से अवगत कराया। अजमेर के प्रसिद्ध आर्य पुरुष हकीम वीरूमल आर्यप्रेमी जी के पारिवारिक यज्ञ में भी उन्हें शास्त्रीय विधि-विधान समझाया, फलत: आप दोनों ने अपने विधियों में परिवर्तन कर लिया।

दयानन्दनिष्ठ दृष्टि व मान्यताएँ- अलूनी शिला को आजीवन चाटना- पूज्य गुरुजी छात्रों से प्राय: कहा करते थे-शास्त्र अलूनीशिला है, जिसे जीवनभर चाटना है, इसमें कोई रस नहीं है, कोई आकर्षण नहीं है। जिसको यह स्वीकार हो, वह इस मार्ग में प्रवृत्त हो, हमारे साथ रहे। गुरुजी की यह हार्दिक अभीप्सा थी कि 'हमने वेदांगों, मुख्यत: व्याकरण और निरुक्त के अध्ययन के आर्ष मार्ग को प्रशस्त किया, अब हार्दिक इच्छा है कि कोई वेद के उपांगों (दर्शन) के अध्ययन के आर्ष मार्ग को प्रशस्त करे।[११] गुरुजी अपने शिष्यों से उनके जीवनोद्देश्यों में यह अपेक्षा रखते थे-'तुम्हारा ऋषि दयानन्द प्रदर्शित आर्ष पाठविधि ही मुख्योद्देश्य आजीवन होगा। ऋषि दयानन्द वर्जित किसी ग्रन्थ को नहीं पढ़ाना। हर विषय में ऋषि दयानन्दाभिमत समाधान तुम्हारा उद्देश्य होगा, जिस बात का समाधान समझ में न आये चुप रहें, प्रयत्न करें, दस वर्ष पीछे भी समझ में आ सकता है। मार्जन रखें किन्तु अधीर होकर ऋषि को कभी गलत न कहना[१२] गुरुजी का यह दृढ़ विश्वास था जब भारत में यह समझा जायेगा कि जिसने संस्कृत नहीं पढ़ी वह भारतीय ही नहीं है, तब लोग अनिवार्यता से संस्कृत पढ़ने लगेंगे। यह अवस्था अष्टाध्यायी-पद्धति से ही हो सकती है, इसी परिणाम पर सभी पहुँचेगें।[१३]

वेदवाणी पत्रिका का सम्पादन- वेद-विद्वद्-जगत् में अति प्रतिष्ठित 'वेदवाणी' पत्रिका विगत ७६ वर्षों से निरन्तर (अविछिन्न) प्रकाशित हो रही है। इसका प्रथम अंक भाद्रपद वि.सं. २००५ (अगस्त-सितम्बर १९४८ ई.) में प्रकाशित हुआ था। कार्त्तिक वि.सं. २००६ (अक्टूबर १९४९ ई.) से इस पत्रिका का सम्पादन-भार सम्माननीय जिज्ञासु जी ने सम्भाल लिया, तब से मृत्यु पर्यन्त (२२ दिसम्बर १९६४ ई.) गुरुजी के सम्पादकत्व में यह पत्रिका निकलती रही। लगभग १५ वर्ष तक 'वेदवाणी' मासिक पत्रिका का आपने सम्पादन किया। आपके सम्पादन काल में देश-विदेश में 'वेदवाणी' वैदिक अनुसंधान और मौलिक लेखों से समन्वित अद्वितीय पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठापित हुई। सम्पादक के वेदविद् होने से स्वभावत: यह पत्रिका वेदविषयक शोधपूर्ण लेखों से परिपूर्ण रहती थी। पुनरपि गुरुजी के सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से भी अति जागरूक होने के कारण राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विषयों पर भी गुरुजी के स्वतंत्र एवं मौलिक विचार पत्रिका के माध्यम से व्यक्त हुए। गुरुजी ने 'वेदवाणी' में प्रतिवर्ष 'वेदांक' के रूप में विशेषांक प्रकाशित करने की एक शृंखला चालू की थी, जो अत्यन्त सफल हुई और सर्वत्र प्रशंसित हुई। पाश्चात्त्य मत परीक्षणांक उस शृंखला का प्रसिद्ध अंक था, जिसकी माँग आज तक होती रहती है। गुरुजी के देहान्त के बाद पं. युधिष्ठिर मीमांसक, आचार्य विजयपाल विद्यावारिधि तथा श्री पं. प्रदीप शास्त्री क्रमश: 'वेदवाणी' के सम्पादक होते रहे हैं।

रामलाल कपूर ट्रस्ट की स्थापना- गुरुजी के महत्त्वपूर्ण कार्यों में रामलाल कपूर ट्रस्ट की स्थापना और संचालन भी एक अन्यतम और उल्लेखनीय कार्य माना जाता है। २६ फरवरी १९२८ ई. को धर्मनिष्ठ विद्याप्रेमी श्रीमान् बाबू रामलालजी कपूर अमृतसर निवासी के निधन के पश्चात् प्राचीन संस्कृति, सभ्यता तथा साहित्य में श्रद्धावान् उनके पुत्रों-श्री रूपलाल कपूर, श्री हंसराज कपूर, श्री ज्ञानचन्द्र कपूर तथा श्री प्यारेलाल कपूर ने अपने पूज्य पिताजी की स्मृति में इस ट्रस्ट की स्थापना की और इसकी नियमानुसार रजिस्ट्री कर दी।

ट्रस्ट का उद्देश्य-प्राचीन भारतीय साहित्य का अन्वेषण, उसकी रक्षा तथा प्रचार एवं भारतीय संस्कृति, भारतीय शिक्षा, भारतीय विज्ञान और चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा।

ट्रस्ट के प्रथम प्रधान त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज बनाये गये। महात्माजी के देहान्त के बाद पूज्यपाद गुरुवर्य पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी ट्रस्ट के आजीवन प्रधान रहे। आज भी यह ट्रस्ट वैदिक और आर्ष साहित्य के प्रकाशन, वेदवाणी पत्रिका के सम्पादन-प्रकाशन तथा पाणिनि महाविद्यालय के संचालन के कारण अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्थान और न्यास के रूप में समादृत है। सम्प्रति वेद, वेदांग (शिक्षा-कल्प-निरुक्त-व्याकरण छन्दःशास्त्र- ज्योतिष), कर्मकाण्ड, नीतिशास्त्र, इतिहास तथा अध्यात्म विषयक शोधपूर्ण और ऐतिहासिक महत्त्व के १४६ ग्रन्थों को प्रकाशित करके उल्लेखनीय प्रतिष्ठान बना हुआ है।

संस्कृत विश्वविद्यालय में 'प्राचीन व्याकरण' को पाठ्यक्रम में स्थान दिलाना- गुरुजी का एक अति महत्त्वपूर्ण कार्य यह रहा कि काशी का क्वीन्स कॉलेज (संस्कृत महाविद्यालय) जब उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. सम्पूर्णानन्द के उद्योग से वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, तब प्रख्यात प्राच्यविद्याविशारद डॉ. मंगलदेव शास्त्री इसके प्रथम उपकुलपति पद पर प्रतिष्ठित हुए। पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी से मान्य डॉ. शास्त्री जी की अन्तरंगता थी। डॉ. शास्त्री बाल्यकाल में गुरुकुल सूर्यकुण्ड बदायूँ (स्वामी दर्शनान्द जी द्वारा स्थापित) में पढ़े थे। अतः ऋषि दयानन्द के भक्त जिज्ञासु जी ने इस विश्वविद्यालय की मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाओं के लिए प्राचीन व्याकरण विषय स्वीकृत कराया। पाठ्यक्रम में अष्टाध्यायी, काशिका तथा महाभाष्य ग्रन्थ निर्धारित किया गया। सहायक ग्रन्थ के रूप में ऋषि दयानन्दकृत वेदांग प्रकाश के सन्धि, नामिक, आख्यातिक आदि ग्रन्थ भी लगाये गये। 'प्राचीन व्याकरण विभाग' भी अलग से विश्वविद्यालय में खोला गया, जिसके प्रथम आचार्य (प्रोफेसर) पक्ष पर पं. श्री देवदत्त शर्मोपाध्याय प्रतिष्ठित हुए। पं. देवदत्त जी शमर्मोपाध्याय गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के सुयोग्य स्नातक थे तथा उन्हें व्याकरण, दर्शन और आगम विषय में विशेष प्रवीणता प्राप्त थी। वेद विषय में 'वेदनिरुक्ताचार्य' की परीक्षा और उसका पाठ्यक्रम भी गुरुजी के अनन्य सहयोग से ही सम्भव हो सका।

साहित्य साधना- १. यजुर्वेद भाष्य विवरण- गुरुजी की रचनाओं में यह सर्वप्रमुख है। ऋषि दयानन्द रचित यजुर्वेद भाष्य के प्रथम १५ अध्यायों पर यह विवरण लिखा गया है। २०x३०/८ आकार के कुल १०७९ पृष्ठों का यह महत्काय ग्रन्थ है। ऋषि-भाष्य पर विस्तृत टिप्पणियों के अतिरिक्त भाष्य की पुष्टि में व्याकरण की विशद विवृत्ति तथा स्वर प्रक्रिया भी दी गई है। दयानन्द भाष्य पर पौराणिक पण्डितों द्वारा निर्दिष्ट अशुद्धियों तथा भाषागत अपप्रयोगों की साधुता यहाँ सिद्ध की गई है। ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य तथा उनकी वैदिक मान्यताओं पर जो भी आक्षेप ऋषि के समकालीन पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी से लेकर १९४० ई. तक पौराणिक, पाश्चात्त्य तथा आधुनिक विद्वान् लगाते रहे हैं, उन सबका शास्त्रीय समाधान (तर्क और प्रमाण से समन्वित उत्तर भी) इसमें द्रष्टव्य है। साथ ही इसमें वेद ज्ञान का स्वरूप, वेद की शाखाएँ, देवतावाद, छन्दोविचार, धातुओं का अनेकार्थत्व, यौगिकवाद तथा वेदार्थ की विविध प्रक्रिया आदि विविध विषय भी विवेचित हुए हैं। प्रथम १० अध्याय तक इस ग्रन्थ का १९४४ ई. में प्रथम संस्करण तथा १९५९ ई. में द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। अवशिष्ट ५ अध्यायों का विवरण २००८ विक्रम संवत् में प्रकाशित हुआ।

२. अष्टाध्यायी भाष्य-प्रथमावृत्ति- गुरुजी आजीवन ऋषि दयानन्द प्रदर्शित अष्टाध्यायी क्रम से अर्थात् आर्ष पद्धति से संस्कृत व्याकरण के पठन-पाठन में व्याप्त रहे थे। अतः उन्होंने सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के प्रत्येक सूत्र की (१) पदच्छेद-विभक्ति (२) समास (३) अधिकार-अनुवृत्ति (४) अर्थ (५) उदाहरण (६)

सिद्धि-के रूप में विस्तृत व्याख्या लिखने का उपक्रम किया। सहायक के रूप में रहीं उन्हीं की प्रिय अन्तेवासिनी डॉ. प्रज्ञा देवी व्याकरणाचार्या। यह महत् कार्य तीन भागों में पूर्ण हुआ। सौभाग्य से प्रथम भाग (१-३ अध्याय पृष्ठ-१०२१) का लोकार्पण गुरुजी के जीवनकाल में ही १५ दिसम्बर १९६४ ई. को सम्पन्न हुआ। द्वितीय भाग (चतुर्थ तथा पंचम अध्याय-पृष्ठ-५९५) का प्रकाशन उनके निधन के पश्चात् दिसम्बर १९६५ ई. में हुआ। तृतीय भाग (६-८ अध्याय, पृष्ठ-७८४) को उसी शैली में गुरुजी की शिष्या डॉ. प्रज्ञा देवी व्याकरणाचार्या ने लिखकर पूरा किया, जिसका प्रकाशन जनवरी १९६८ ई. में हुआ।

३. ऋषि दयानन्द रचित अष्टाध्यायी भाष्य का सम्पादन- स्वामी दयानन्द रचित अष्टाध्यायी भाष्य की हस्तलिखित प्रति परोपकारिणी सभा में विद्यमान है। यह भाष्य प्रथम अध्याय से लेकर सप्तम अध्याय के द्वितीय पाद के दो तिहाई सूत्र पर्यन्त है। प्रारम्भ से लेकर चतुर्थ अध्याय पर्यन्त का भाष्य ऋषि दयानन्दकृत है, शेष भाग स्वामी जी के सहयोगी पण्डितों का प्रयत्न है।[१४] प्रथम दो अध्यायों तक का सम्पादन प्रख्यात प्राच्यविद्याविद् डॉ. रघुवीर ने किया था, जिसका प्रकाशन परोपकारिणी सभा नें १९२७ ई. में किया। तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय के सम्पादन का कार्य सम्पन्न करके पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने १९४२ ई. में परोपकारिणी सभा को सौंप दिया था। खेद है कि परोपकारिणी सभा चिरकाल तक इसे प्रकाशित न कर सकी और १९८२ ई. में पं. युधिष्ठिर मीमांसक को सभा ने सूचित किया कि यह गुम हो गया है।[१५]

४. संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि- गुरुजी ने प्रौढ़ावस्था वाले सज्जनों के लिए आर्ष पद्धति अर्थात् अष्टाध्यायी क्रम से संस्कृत व्याकरण के पठन-पाठन का आन्दोलन कई दशकों तक चालाया था। देश के विभिन्न भागों में इसी क्रम से व्याकरण के अध्ययन-अध्यापन में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली थी। पठन-पाठन के इस क्रम को सिल-सिलेवार ४४ चौवालीस पाठों में उन्होंने लेखबद्ध किया तथा अग्रिम साढ़े चार मास के पाठ का निर्देश भी। ६ मास में पूरी होने वाली यह सब सामग्री उपर्युक्त शीर्षक के रूप में पुस्तकाकार छापी गई। कहना नहीं होगा कि इस पुस्तक की सहायता से लाखों लोगों ने संस्कृत व्याकरण का यथोचित अंश अधिगत किया। गुरुजी के शिष्यों-पं. धर्मानन्द शास्त्री तथा आचार्य डॉ. धर्मवीर जी ने लगभग ५० वर्षों तक देश के अनेक नगरों में शिविर के रूप में 'सरलतम विधि' का अध्यापन जारी रखा। इसका प्रथम संस्करण १९५५ ई. में प्रकाशित हुआ था। इससे पूर्व 'वेदवाणी' के १९५५ ई. के अंकों में भी क्रमशः यह सब छपा था।

५. जिज्ञासु रचना मंजरी (प्रथम भाग)- पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी की जन्म शताब्दी (१९९२ ई.) वर्ष के समापन के अवसर पर गुरुजी की उपरिवर्णित पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाओं को संकलित कर दो भागों में छापा गया। दोनों भागों के सम्पादक थे-पं. युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग की पृष्ठ सं.-४६५, आकार-२३ X ३६/१६। इसका प्रथम संस्करण १९९३ ई. में प्रकाशित हुआ। इस भाग में जिज्ञासु जी के लघु ग्रन्थों का संग्रह था, जिसमें (क) स्वलिखित जीवन परिचय (ख) वेद वेदार्थ विवेचन (यजुर्वेद भाष्य विवरण की भूमिका) (ग) विवरण के द्वितीय संस्करण की विशेषताएँ (घ) वेद और निरुक्त (ङ) निरुक्तकार और वेद में इतिहास (च) देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का वास्विक स्वरूप-पुस्तकें संगृहीत थीं। उपोद्घात-भूमिकाएँ-इसके अन्तर्गत (क) काशिका का उपोद्घात (ख) प्रथमावृत्ति-भूमिका तथा प्राक्कथन (ग) सरलतम विधि-भूमिका (घ) आर्याभिविनय-भूमिका (ङ) सन्ध्योपासनविधि-भूमिका।

६. जिज्ञासु रचना मंजरी (द्वितीय भाग)- आकार-२३ X ३६/१६ पृष्ठ सं.-६२०। पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु स्वसामयिक वेदविदों में अग्रगण्य

थे। अतः स्वाभाविक था कि उन्हें आदरपूर्वक वेद सम्मेलनों के सभापतित्व के लिए आमंत्रित किया जाय। 'रचना मंजरी' के द्वितीय भाग में (क) वेद सम्मेलन लाहौर, (ख) आर्य विद्वत् सम्मेलन कलकत्ता (ग) वेद सम्मेलन खुरजा (घ) वेद सम्मेलन मेरठ के अध्यक्षीय भाषण पुनः मुद्रित किये गये हैं। एवंविध गम्भीर वेदविषयक विवेचन प्रायः दुर्लभ हैं। इसके अतिरिक्त गुरुजी के उपलब्ध २० बीस निबन्धों का भी संकलन इसमें किया गया है।

पाद टिप्पणियाँ - १. निरुक्तकार यास्क वेद में इतिहास मानते थे या नहीं विषय पर आर्यसमाज के दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ, प्रथम संस्करण १९७५ ई., द्वितीय संस्करण १९९४ ई., प्रकाशक- रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)। २. गुरुजी (पं. ब्रह्मदत्त जी) द्वारा स्थापित पाणिनि महाविद्यालय वाराणसी में लगभग ४० आलमारी (लगभग १८०००) पुस्तकें (लाहौर पाकिस्तान में ५०-६० मन नष्ट हो जाने पर भी) थीं, जिसमें अलभ्य पुस्तकें भारी संख्या में हैं। गुरुजी के स्वर्गवास के अनन्तर उनका निजी पुस्तकालय भी 'रामलाल कपूर ट्रस्ट' के पुस्तकालय का अंग बन गया है। ३. स्मारिका-पद वाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु (१८९२-१९९२ ई.), 'स्वलिखित जीवन परिचय', पृष्ठ-८-९। ४. वही, रामशंकर भट्टाचार्य का लेख महावैयाकरण जिज्ञासु जी, पृष्ठ-२६९-२७०। ५. वही, श्री विजयपाल जी आचार्य का लेख 'गुरुवर पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु', पृष्ठ-३३२। ६. वेदवाणी (विशेषांक) नवम्बर २०२१, पं. युधिष्ठिर मीमांसक का लेख-'विरजानन्द आश्रम (१९२१-१९९२ ई.), पृष्ठ-८-९। ७. स्मारिका-पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी-श्री विजयपाल जी आचार्य का लेख 'गुरुवर पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पृष्ठ-३४४। ८. वही, पृष्ठ-३४५। ९. वही, पृष्ठ-३४५। १०. वही, पृष्ठ-३४३। ११. वही, पृष्ठ-३३२। १२. वही, सुश्रीमेधा देवी का लेख 'ऋषिकल्प पूजनीय गुरुजी' पृष्ठ-३०५। १३. वही, पृष्ठ-३०७। १४. ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास (पं. युधिष्ठिर मीमांसक) द्वितीय संस्करण-२०१८ ई., पृष्ठ-१६६-१७०। १५. वही, पृष्ठ-१७३।

सहायक सामग्री- १. पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु जन्म शताब्दी स्मारिका-१४ अक्टूबर १९९२ ई.। प्रकाशक-रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)। २. विरजानन्द आश्रम शताब्दी-विशेषाङ्क (प्रथम भाग) नवम्बर २०२१ ई., प्रकाशक-वेदवाणी कार्यालय, रेवली (सोनीपत-हरयाणा)। ३. विरजानन्द आश्रम शताब्दी-विशेषाङ्क (द्वितीय भाग) दिसम्बर-जनवरी २०२१-२०२२ ई., प्रकाशक वेदवाणी कार्यालय, रेवली (सोनीपत- हरयाणा)। ४. 'वेदवाणी' हीरक जयन्ती विशेषाङ्क नवम्बर २०२३ ई., प्रकाशक-वेदवाणी कार्यालय, रेवली (सोनीपत-हरयाणा)।

परोपकारिणी सभा, अजमेर स्थापना दिवस - २०२५

दिनांक २७ फरवरी, २०२५ को ऋषि उद्यान में उल्लासपूर्वक आयोजित होगा। यह कार्यक्रम दो सत्रों में होगा। कार्यक्रम में पधारने वाले विद्वान् ये होंगे-

स्वामी विदेह योगी, स्वामी ओमानन्द सरस्वती, डॉ. सुरेन्द्र कुमार, डॉ. वेदपाल, मुनि सत्यजित्, श्री सज्जनसिंह कोठारी, डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, आचार्य अंकित प्रभाकर, डॉ. आशुतोष पारीक। **कन्हैयालाल आर्य (मन्त्री)**

सम्पर्क सूत्र - ऋषि उद्यान - ९४१३३५६७२८ - परोपकारिणी सभा - ८८९०३१६९६१

वधु की आवश्यकता - जन्म-१९९४, लम्बाई - ५.७-८ फुट, शिक्षा - बी.ए. प्रतिष्ठित निजी कम्पनी में कार्यरत, वेतन - ३०,००० रु. रंग -गोरा, उत्तम स्वास्थ व स्वभाव के आर्य युवक के लिए शिक्षित, आर्योचितगुणयुक्त पारिवारिक वधु की आवश्यकता है । इच्छुकजन अधिक जानकारी के लिए ९०७९०३९०८८ पर सम्पर्क करें।

(परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित)

योग–ध्यान स्वाध्याय शिविर

संवत् २०८१, फाल्गुन कृष्ण अष्टमी से अमावस्या तक, तदनुसार २१ से २७ फरवरी २०२५

इस योग–साधना शिविर में योग सम्बन्धी विषयों का वैदिक–दर्शनों व उपनिषदों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे।

इस शिविर में निम्नलिखित प्रशिक्षक का सान्निध्य प्राप्त होगा –

०१. स्वामी विदेह योगी　　०२. डॉ. सुरेन्द्र कुमार

०३ डॉ. वेदपाल　　०४ स्वामी ओमानन्द सरस्वती

०५. डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी　　०६. आचार्य अंकित प्रभाकर

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक शिविरार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।

२. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य–सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।

३. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।

४. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि–उद्यान परिसर में ही की जायेगी।

५. बाह्य–वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे– समाचार–पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।

६. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।

७. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन–सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।

८. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

९. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ– परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) कार्यालय से (०१४५–२९४८६९८, मो. ८८९०३१६९६१, ८८२४१४७०७४, ९९१११९७०७३, ९४१४५८९५१०) से सम्पर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता–बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्–पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार अतिरिक्त भुगतान से की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष

दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने-ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गम्भीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने-पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क २००० रु. मात्र जमा करना होगा। पृथक् कक्ष का शुल्क २००० रु. अतिरिक्त देय है। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारम्भ दिनांक से एक दिन पहले सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में पहुँच जाना आवश्यक है, क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर **दूरभाष :** ०१४५-२९४८६९८,

मो.नं. ८८९०३१६९६१, ८८२४१४७०७४, ९९११११९०७३

– : मार्ग : –

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

वेद कण्ठस्थीकरण प्रतियोगिता

महोदय,

सादर नमस्ते!

उपर्युक्त विषयान्तर्गत निवेदन है कि प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी ऋषि मेला १८, १९ एवं २० अक्टूबर २०२४ को ऋषि उद्यान, महर्षि दयानन्द मार्ग, अजमेर में आयोजित किया गया था। इस अवसर पर विभिन्न सम्मेलन आयोजित किए गये परन्तु **वेद कण्ठस्थीकरण** की प्रतियोगिताएँ नहीं हो सकी।

अत: अब परोपकारिणी सभा अजमेर के स्थापना दिवस (२७ फरवरी २०२५) के अवसर पर वेद कठस्थीकरण प्रतियोगिता का आयोजन होगा। अत: आप अपने गुरुकुल में अध्ययनरत ब्रह्मचारी/ब्रह्मचारिणी जिन्हें वेद कण्ठस्थ हैं उनके नाम विधिवत् रूप से २७ फरवरी २०२५ से पूर्व मन्त्री परोपकारिणी सभा केसरगंज, अजमेर के पते पर भिजवाने का श्रम करें, ताकि प्रतियोगिता में संभागीगणों के निर्णय के बाद उन्हें पुरस्कृत किया जा सके। इससे वेद कण्ठस्थीकरण में ब्रह्मचारी/ब्रह्मचारिणियों की रुचि बढ़ेगी वहीं वेदों के कण्ठस्थीकरण के प्रति जाग्रति पैदा होगी। सद्भावनाओं सहित

मन्त्री

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = ११००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक,
कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की नि:शुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्र: ८८९०३१६९६१**

आर्य संस्थाओं से आग्रह

आर्य समाज एवं अन्य आर्य संस्थाएं अपने निर्वाचन, वार्षिकोत्सव और योग शिविर आदि आयोजन के संक्षिप्त समाचार परोपकारी में प्रकाशनार्थ भिजवा सकते हैं।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अत: परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **५०० से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

- कन्हैयालाल आर्य, मंत्री, परोपकारिणी सभा

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

नूतन छात्रावास भवन के लोकार्पण के उपलक्ष में निकाली गई शोभायात्रा

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा संस्थापित एवं संचालित महर्षि दयानन्द गुरुकुल आश्रम ग्राम जमानी तहसील इटारसी जिला नर्मदापुरम मध्य प्रदेश के वनवासी बाहुल क्षेत्र में कर्मयोगी परिवार सूरत द्वारा निर्मित नूतन छात्रावास भवन के लोकार्पण के उपलक्ष्य में निकाली गई शोभायात्रा में उपस्थित गुरुकुल के ब्रह्मचारी एवं अधिकारी गण।

आचार्य जीववर्धन शास्त्री - मन्त्री राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा, स्वामी ओमानन्द सरस्वती - सदस्य, परोपकारिणी सभा अजमेर, श्री ओम् मुनि वानप्रस्थी - प्रधान परोपकारिणी सभा अजमेर, श्री कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री परोपकारिणी सभा अजमेर, श्रीमती ज्योत्स्ना धर्मवीर - सदस्य परोपकारिणी सभा अजमेर, आचार्य सत्यप्रिय - आचार्य गुरुकुल जमानी, श्री सुरेश उपाध्याय - आचार्य गुरुकुल जमानी।

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक प्रेषण : ३०-३१ जनवरी २०२५ आर.एन.आई. ३९५९/५९

An ISO 9001:2015 Certified Institution

गुरुकुल कुरुक्षेत्र हरियाणा

स्थापित 1912

Haryana's No. 1 & India's No. 9
Best Vintage Legacy Boys Boarding School by EW

SCAN FOR REGISTRATION

कक्षा 5वीं से 11वीं तक

प्रवेश परीक्षा 2025-26

ऑनलाइन आवेदन
अंतिम तिथि 10 मार्च 2025
11 मार्च से 19 मार्च
1000 रुपये विलम्ब शुल्क के साथ

प्रवेश परीक्षा तिथियां

कक्षाएं	परीक्षा तिथि
9वीं एवं 11वीं	20 मार्च 2025
8वीं	21 मार्च 2025
7वीं	22 मार्च 2025
6वीं	23 मार्च 2025
5वीं	24 मार्च 2025

नोट : प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों की काउंसलिंग अगले दिन होगी।

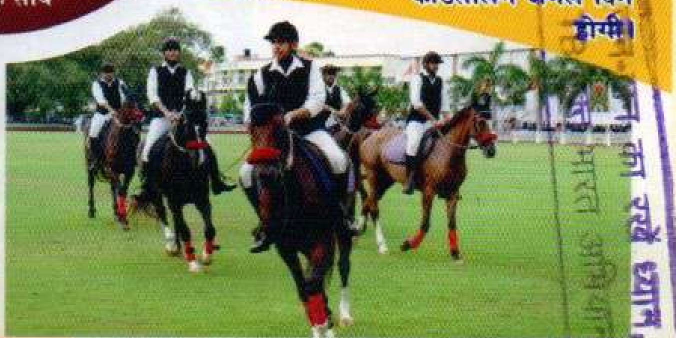

विशेष

- वैदिक मूल्यों पर आधारित देश का एकमात्र सी.बी.एस.ई. से सम्बद्ध विद्यालय
- विगत 10 वर्षों से बोर्ड परीक्षा परिणाम में सभी छात्र मेरिट से उत्तीर्ण
- एन.डी.ए. में पिछले वर्षों में 70 से अधिक छात्रों के साथ इस वर्ष सर्वाधिक 20 से अधिक छात्रों का गुरुकुल से ही चयन
- विगत वर्ष आई.आई.टी. नीट एवं एन.आई.टी. इत्यादि में 103 छात्रों का चयन
- अत्याधुनिक सुविधाओं से युक्त पांच बहुमंजिला भूकम्परोधी छात्रावास
- 1000 सी.सी.टी.वी. कैमरों से लैस 40 एकड़ का भव्य परिसर
- स्मार्ट क्लासिज, डिजीटल लाइब्रेरी, अत्याधुनिक प्रयोगशालाएं, आधुनिकतम् कम्प्यूटर लैब एवं अटल टिंकरिंग लैब
- शूटिंग, हॉर्स राइडिंग, फुटबाल, बालीवाल, मार्शल आर्ट, हैंडवाल, खो-खो, लॉन टेनिस, योग, जिम्नास्टिक, बेडमिंटन, एथलेटिक्स, कबड्डी आदि हेतु निर्धारित मानदण्ड वाले मैदान एवं प्रशिक्षित प्रशिक्षकों की व्यवस्था
- प्राकृतिक कृषि से उत्पन्न अनाज से निर्मित भोजन एवं गो दुग्ध की उत्तम व्यवस्था
- बैंक एवं डाकघर की सुविधा, स्विमिंग पूल की व्यवस्था, नेचुरोपैथी एवं एलोपैथी हॉस्पीटल की विशेष व्यवस्था

JEE/ NEET/ NDA/ CLAT/ Merchant Navy/ CUET
हेतु विशिष्ट मार्गदर्शन एवं करियर काउंसलिंग की उत्तम व्यवस्था

9996026311, 01744-238048, 238648
www.gurukulkurukshetra.com

प्रेषकः
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

डाक टिकिट